कर्मयोगिनी

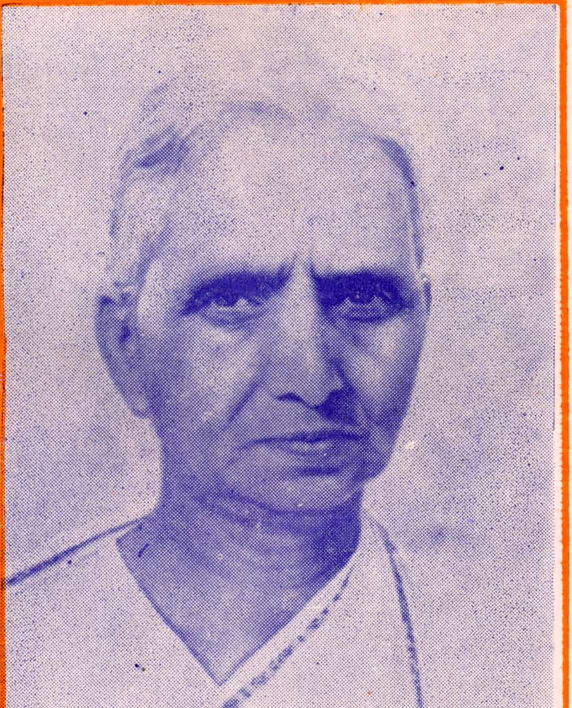

वन्दनीया मौसीजी

कर्मयोगिनी वं० मौसीजी

राष्ट्र सेविका समिति
की
संस्थापिका, प्रमुख संचालिका

श्रीमती लक्ष्मीबाई केलकर
की
जीवनी

सेविका प्रकाशन, मथुरा

प्रकाशक :
सेविका प्रकाशन
मथुरा (उ० प्र०)
पिन—२८१००१
सर्वाधिकार प्रकाशक के अधीन

प्रथम संस्करण-१९८९
द्वितीय संस्करण-१९९६

मुद्रक :
श्रुति-मुद्रण
बिहारीपुरा, वृन्दावन

मूल्य रु० १५/-

मनोगत

वं मौसीजी के ८५ वे जन्म दिन के शुभ अवसर पर उनकी संक्षिप्त जीवनी प्रकाशित करते हुए हमें बड़ी प्रसन्नता है। वं० मौसीजी की जीवनी हिन्दी में प्रकाशित करना अत्यावश्यक था। उनके जीवन के हरेक पहलू का दर्शन. इस छोटी पुस्तिका में करना कठिन था परन्तु वं० मौसीजी का संक्षिप्त परिचय बालिकाओं को होगा ऐसा ही प्रयत्न हमने किया है। इसमें अनेक त्रुटियाँ होंगी इसका भान हमें है। चरित्र-विशेषता को ध्यान में लेते हुए पाठकगण क्षमा करेंगे ऐसा विश्वास है।

पुस्तक निर्मिति में नागपुर के सुप्रसिद्ध पत्रकार श्रीसत्यपाल जी पटाईत द्वारा मौलिक सूचनाएँ प्राप्त हुईं। अरुण प्रिंटिंग प्रेस के व्यवस्थापक श्री बंडुभैया भिड़े ने तत्परता से मुद्रण कार्य में सहाय्य दिया है। मुखपृष्ठ का चित्र सौ. इन्दूताई गोखले B.A.G.D. (Arts) के कुशल हाथों से तैय्यार हुआ है। उसको प्रभावी ढंग से मुखपृष्ठ पर मुद्रित करने में मधुकर आर्ट के श्री मधुकरराव वैद्य का सहयोग प्राप्त हुआ है। ये सब अपने ही परिवार के घटक, औपचारिक धन्यवाद देना पसन्द नहीं करेंगे। परन्तु उनका ऋण मान्य करना ही चाहिये। अन्य सभी सहाय्य कर्ताओं के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना हमारा कर्तव्य है।

पुस्तक-विमोचन के लिये वर्धा के मूल निवासी तथा रा.स्व संघ के ज्येष्ठ, समर्पित कार्यकर्ता, महाराष्ट्र-गुजरात प्रान्त के क्षेत्रीय प्रचारक व विदेश विभाग प्रमुख श्रद्धेय श्रीलक्ष्मणराव भिडे उपस्थित हो सकें यह सुखद सौभाग्यपूर्ण संयोग है। मा. भिडेजी की माता श्री काकू तथा वं० मौसीजी का आत्मीय संबंध शब्दों में प्रकट नहीं हो सकता है। यह छोटी सी रचना वं० मौसीजी के चरणों पर समर्पित करते हुए। भवदीया

सम्पादिका

अन्तरङ्ग

		पृष्ठ सं०
१	बचपन के वे सुहाने दिन	१
२	रंग बदलती जीवन धारा	१०
३	सुख-दुःख की छाँह में	१७
४	जीवन ध्येय की खोज में	२७
५	हम करें राष्ट्र आराधन	३८
६	कार्य विस्तार के चरण	४५
७	करो तुम राम कथा विस्तार	५५
८	राष्ट्रभक्ति के जीवन रस से	६३
९	कुशलता कर्तृत्व की	७०
१०	मातृभूमिहित देह समर्पण	७७

ॐ

बचपन के वे सुहाने दिन

भारत देश, मेरा देश
मेरी माता और परमेश
मेरा जीवन, मेरे प्राण
भारत माता पर कुर्बान ॥

संगठना का दुर्धर व्रत
स्वीकारा है आज सती का
भेद भूलें, भेद भूलें
रुठना-चिढ़ना छोड़ देंगे ॥

समिति में आयें
प्रेम सीखें, त्याग सीखें
हिन्दू बहिनों को संदेश
भारत देश, मेरा देश ॥

इस दिव्य संदेश के साथ भारत माता की कन्याओं को उनके व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के लिये खुले मैदान में एकत्रित लाने वाली प्रेरणाशक्ति का साकार रूप था—वंदनीया श्रीमती लक्ष्मीबाई केलकर उपाख्य मौसीजी ।

६ जुलाई १९०५, आषाढ़ शुक्ल दशमी शके १८२७ के पावन मुहूर्त में भारत के मध्यस्थान स्थित नागपुर के 'महल' विभाग की राममंदिर गली के दाते परिवार में एक बालिका ने जन्म लिया। उदकसुस्नात, प्रसन्न पुष्प के समान विलोभनीय कोमल रूप देख कर, उपस्थित चिकित्सक की स्वाभाविक प्रतिक्रिया प्रकट हुई, "भाभीजी, इसका नाम कमल रखियेगा, ताजे कमलपुष्प जैसा इसका रूप है, इसके गुणों की सुगन्ध सभी को आकृष्ट करेगी, यह स्नेहरज्जु में सभी को बद्ध करेगी। मानो चिकित्सक के मुख से नियति ने ही भविष्यवाणी प्रकट की। श्रीरामभक्त वं. मौसीजी का जन्म भी राममंदिर गली में हो, यह एक संजोग था।

सुन्दर रूप, मधुर वाणी और नम्र व्यवहार के कारण कमल सबकी लाडली बनी। अपनी चाची–जो दाई नाम से परिचित थी–के साथ वह नित्य मंदिरों में कीर्तन सुनने के लिये जाती थी, एकाग्र मन से सारी कथाएँ सुनती थी। बालमन पर एक संस्कार अंकित होता रहा। देखते-देखते कमल के जीवनग्रंथ के छह पृष्ठ पलट गये। अड़ोस-पड़ोस के बालकों को विद्यालय जाते हुए कमल देखती रहती थी। उसके मन में विचार आता था, 'मुझे अण्णा (पिताजी) कब विद्यालय में भेजेंगे ? "अपनी माँ के पास जाकर उसने पूछा, माँ ! मुझे विद्यालय में भेजोगी न, माँ ! मैं विद्यालय जाऊँगी, खूब पढूंगी फिर तुझे कहानियाँ सुनाऊंगी"।

उन दिनों नागपुर में बालिका विद्यालय की अच्छी सुविधा नहीं थी। कमल के घर के निकट एक ही विद्यालय था, वह भी ईसाइयों द्वारा संचालित। मजबूरी से कमल के पिता

ने उसे उसी विद्यालय में प्रवेश दिलवाया। छोटी कमल अपने पिता के साथ विद्यालय गयी। वहाँ का अनोखा वातावरण देखकर वह संभ्रमित हुई। परन्तु पढ़ने की जिद्द थी। वह धीरे-धीरे बारहखड़ी रटने लगी, विद्यालयीन पाठों में रुचि लेने लगी। विद्यालय की शिक्षिकाओं का पढ़ाना, उनका व्यवहार उनकी कहानियाँ और मदिर में कीर्तनों में सुनी कथाएँ, इनमें बहुत अन्तर है, यह बात कमल के ध्यान में आ गयी। ऐसा क्यों ? मन में संभ्रम निर्माण हुआ. इसका उत्तर देने में कमल का बालमन असमर्थ था। उसका श्रद्धालु - मन अपने देवी देवताओं की आलोचना मानने के लिये तैयार नहीं था। कृष्ण तो गोपालों के बीच खेलता था, राम वानरों के साथ रहता था, शबरी के जूठे बेर आनन्द से खाता था, फिर शिक्षिका क्यों कहती है कि भगवान आकाश में रहता है। उसे ही मानें ?

उस दिन भी नित्य के समान कमल विद्यालय पहुँची। मन में कुछ संकल्प था। शिक्षिका ने सबसे कहा, 'प्रार्थना के लिये सभी बालिकाएँ आँखें बन्द करेंगी।' यंत्रवत् सभी ने आँखें बन्द की। कमल ने भी प्रथम वैसा ही किया और अगले ही क्षण आँखें खोली। अपनी शिक्षिका क्या कहती है इसकी मन में उत्सुकता थी ? कमल ने चुपके से देखा, शिक्षिका की आँखें खुली हैं। दोनों की नजरें मिलीं। उसी क्षण शिक्षिका बिजलीसी गरज कर बोली "कमल, तेरी आँखें खुली क्यों हैं ? "आपको कैसा पता चला कि मेरी आँखें खुली हैं ?" निर्भय कमल ने प्रति प्रश्न किया। कमल का प्रश्न पूर्ण होने के पहले ही शिक्षिका की पाँचों अंगुलियों के निशान कमल के

सुकोमल गालों पर अंकित हुए। कमल को बहुत दुःख हुआ। 'प्रार्थना के समय छात्राएँ आँखें बन्द रखें, पर शिक्षिका क्यों नहीं? यह पूछा जाने पर मॅडम को इतना गुस्सा क्यों आया ?' मन में तूफान उठा था।

कमल घर आयी। आते ही अपना बस्ता फेंकते हुए उसने घोषणा की—'माँ, कल से मैं विद्यालय नहीं जाने वाली हूँ।' माँ काम में व्यस्त थी। उसने कमल की घोषणा सुनी और मन में सोचा, रोज बड़ी राजी खुशी से विद्यालय जाने-वाली कमल को यह क्या हो गया ? आटे के सने हाथ थे। वे वैसी ही बाहर आयीं। यशोदाबाई ने (माँ) देखा तो कमल ने बस्ता फेंक दिया है, वह बहुत गंभीर और विचार मग्न है।

'क्या हुआ, कमल ?' यशोदाबाई ने पूछा। कमल ने माँ की ओर मुख कर दिया और बोली देखो ऽऽऽ।

अरे ऽऽ यह क्या ? 'कमल, तेरे गाल इतने लाल क्यों हो गये ? क्या हुआ, बताओ'—माँ ने पूछा।

कमल ने सारी घटना बता दी और कहा, 'माँ कल से मैं पढ़ने के लिये नहीं जाऊँगी, क्योंकि वहाँ अपने राम, कृष्ण का उपहास होता है। मैं तो दाई के साथ कीर्तन में जाया करूँगी। वहाँ महाराज कैसी अच्छी कहानियाँ बताते हैं।'

यशोदाबाई ने समझ लिया कि कमल अब उस विद्यालय में नहीं जायेगी। अब उसे कहाँ भेजा जाय, पढ़ने के लिये ? उनके सामने प्रश्न खड़ा हुआ।

कमल के ग्रह भाग्यस्थान में थे इसलिये कुछ महिनों बाद नागपुर में 'हिंदु मुलींची शाला' यह विद्यालय कुछ

हिंदुत्वनिष्ठ लोगों ने प्रारम्भ किया। कमल की पढ़ाई वहाँ पुनश्च प्रारम्भ हुई।

विद्यालय से आने के पश्चात् कमल अपने भाईयों के साथ सूरपारंबी, आटया-पाटया आदि सामान्यतः लड़कों के समझे गये खेल खेलती थीं। लेहंगा पक्का बाँधकर वह चपलता से पेड़ों पर चढ़ती थी। खेलते-खेलते कभी घुटने खरोंच जाते थे, खून बहता था। पर कमल कभी रोयी नहीं, ना कभी शिकायत की। वेदना का थोड़ा भी स्वर माँ सुनेगी, तो बाहर खेलना बन्द कर देगी, यह उसे पक्का मालूम था। निर्भय मन से भविष्य में आने वाले सभी संकटों को हँसते-हँसते झेलना है, इसकी पूर्व तैयारी मानो नियति कमल से करवा रही थी।

दौड़धूप के खेलों की ओर कमल का जितना लगाव था, उतना ही 'घरौंदा' के खेल में भी। कमल की बाल सहेलियों में से दो उसकी अधिक प्रिय थीं। श्यामा जोगलेकर और ताई देशपांडे। किसी भी छुट्टी के दिन या ग्रीष्मावकाश में वे सब गुड्डा-गुड्डी के विवाह का खेल खेलती थीं। वरपक्ष, वधूपक्ष निश्चित किया जाता था। दोनों पक्ष अपनी-अपनी तैयारी के साथ आते थे।

ऐसे ही एकबार खेलने की योजना बनी। मुडी के, सत्तू के, आटे के लड्डू, लेन देन की चीजें, गुड्डा किसका गुड्डी किसकी, सब तय हो गया। विवाह सम्पन्न हुआ। प्रीतिभोज प्रारंभ हुआ, सब कुछ मजे में चल रहा था। इतने में कमल की माँ ने उसे किसी कारण-वश घर में बुलाया। काम करके

कमल जब वापिस आयी, तो उसने देखा विवाह-स्थल युद्धस्थल बन गया था। वरपक्ष, वधूपक्ष की आवाज तार सप्तक में पहुँची हुयी थी। कौन पीछे हटेगा यह प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गया? कोई बोल रहा था 'तुम तांगेवाले, हम वसतिगृहवाले। 'हम तुमसे श्रेष्ठ' 'हम तुमसे श्रेष्ठ' की प्रतिध्वनि मण्डप में गूंज रही थी। शब्दों की लड़ाई अब हाथापाई पर उतर आयी। कमल ने यह दृश्य देखा। उसके ध्यान में आ गया, क्या हुआ होगा। उसने अपने संयत, मधुर परन्तु दृढ़ स्वर से कहाँ, 'अरे अरे क्यों लड़ते हो? बन्द करो लड़ना। तांगा हो या वसतिगृह दोनों भी अपने लिये आवश्यक हैं। इनमें कोई छोटा नहीं, कोई बड़ा नहीं। चलो, भूल जाओ झगड़ा। भोजन कर, बारात को भेजना है न।'

कमल के आवाहन पर कोलाहल एकदम बन्द हो गया। आगे के सभी कार्यक्रम सुचारु रूप से सम्पन्न हुए। परिस्थिति का त्वरित आकलन करने की शक्ति और प्रभावी शब्द रचना कमल को बाल्यकाल से ही प्राप्त थी। घर के संस्कारक्षम परिवेश का ही यह परिणाम था। स्याहीचूस कागज जैसे अनायास स्याही सोख लेता है, वैसा कमल का संवेदनाशील मन भी संस्कार ग्रहण कर लेता था। यही संस्कार भविष्य में समय-समय पर आवश्यकतानुसार प्रकट होते रहे।

एकदिन कमल खेल के बाद घर वापस आयी। नाचती गाती वह कमरे में प्रवेश करने वाली ही थी तो उसके पैर एकदम रुक गये, गीत की पक्ति आधी ही मुंह में रही। आश्चर्य के भाव चेहरे पर फैल गये। एक अंग्रेज बाहर के कक्ष में बैठा हुआ उसने देखा। यह अंग्रेज आदमी अपने घर में क्यों

आया है ? अपनी माँ उसके साथ क्या बात कर रही है। बालसुलभ उत्सुकता से कमल वहीं रुक गयी।

'टुमारे घर में केसरी आता है ? ऐसा हमको समझ गया है। सच है न ?' गोरा पूछ रहा था।

'हाँ आता है।' यशोदाबाई ने उत्तर दिया। उनके घर में लोकमान्य तिलकजी का 'केसरी' प्राणप्रिय था। धर्मग्रंथ का पाठ जितनी श्रद्धा से होता है उतनी ही श्रद्धा से 'अण्णा' कमल के पिता-भास्करराव दाते रोज सुबह 'केसरी' पढ़ते थे और दोपहर यशोदाबाई अपने आसपास रहने वाली बहनों को एकत्रित कर 'केसरी' का प्रकट वाचन करती थी। एक-एक शब्द जोड़कर यह वाचन चलता था। वाचन प्रारम्भ करने के पूर्व लोकमान्यजी की प्रतिमा रखी जाती थी। अगरबत्ती जला कर, केसरी का ध्येय स्पष्ट करने वाला श्लोक सामूहिक रूप से गया जाता था। बड़ी तन्मयता से संपादकीय लेख पढ़ा जाता था। श्रोता भी तल्लीन हो जाते थे। अंग्रेजों के अत्याचार की प्रवृत्ति, गुलामी के अपमान से चिढ़ निर्माण होती थी। स्वदेश-प्रेम से ओत-प्रोत 'केसरी' के संस्कार, कमल के बाल मन पर अंकित हो रहे थे।

रात को घर के सभी लोग एकसाथ भोजन करते थे। कमल के छह भाई, दो बहनें थीं। भोजन करते समय दिन भर की घटनाओं तथा अन्य विषयों पर मुक्त मन से चर्चा गप्पें होती थीं। दाई अपने आसन पर बैठती थी। यशोदाबाई भोजन परोसती थी। वे भी बातचीत में सम्मिलित हो जाती थीं। उस दिन का विषय था उस अंग्रेज का आना। पूरा सम्भाषण दोहराया गया।

यशोदाबाई ने कहा था कि उनके घर में 'केसरी' आता है। यह सुनकर अंग्रेज कह रहा था 'हमारे नौकर 'केसरी' खरीद कर पढ़ें, यह अपराध है, राजद्रोह है, टुमको पटा नहीं' कमल के हृदय की धड़कन बढ़ी। अपनी माँ क्या उत्तर देती है, सुनना चाहती थी।

'केसरी' मैं खरीदती हूँ। तुम्हारे सरकारी नौकरों की सूची में तो मेरा नाम नहीं है।' कमल की माँ ने बड़ी निर्भयता से उत्तर दिया। आगे उन्होंने कहा, 'हमारे घर में केसरी आता है और आता रहेगा।'

'टुम केसरी खरीदते हैं वो तो सरकारी नौकर की तनखा के पैसे से लेते हैं न? टुमारे पास कहाँ से पैसा आता है?' अंग्रेज का प्रश्न था।

'नहीं, मैं सरकारी पैसे से केसरी नहीं खरीदती। मैं गृह स्वामिनी हूँ, घर खर्च के लिये गृहस्वामिनी को दिया गया धन उसका अपना होता है। यह धन वह अपनी मर्जी से खर्च कर सकती है। वह मेरा अधिकार है। मैं अपने पैसे से 'केसरी' खरीदती हूँ।

यशोदाबाई का युक्तिवाद निर्विवाद था। अंग्रेज प्रतिनिधि तो चला गया परन्तु माँ की दृढ़ता, धैर्य, साहस कमल को बहुत कुछ सिखा गया।

भास्करराव और दाई दोनों के मन में प्रश्न था इसकी प्रतिक्रिया अंग्रेज अधिकारी कैसी करेंगे? यह जानते हुए किसी ने यशोदाबाई को नाउम्मीद नहीं किया। इतना ही नहीं तो प्रोत्साहित किया।

यशोदाबाई का 'केसरी' वाचन अबाधित चलता रहा। नागपुर भारत का मध्यवर्ती स्थान है। मध्यप्रांत विदर्भ की राजधानी। उस समय के अनेक ख्यातनाम लोगों का भाषण सुनने का अवसर कमल को मिला। बड़ों के साथ ऐसे कार्यक्रमों में वह जाया करती थीं।

वं० मौसीजी के विचार

स्त्रियों को सुशील एवं प्रगतिशील जीवन का पथप्रदर्शन करने के उद्देश्य से राष्ट्र सेविका समिति रूपी गंगा का अवतरण हुआ। "राष्ट्र सेविका समिति" का यह पावन प्रवाह, मार्ग में आने वाले अनुकूल और प्रतिकूल विचारोंके उबड़खाबड़ मार्ग से अनवरत बह रहा है और समाजरूपी सागर से मिलने जा रहा है। असमतल मार्ग से बहते हुए सागर के अन्तस्थल में प्रवेश करना यही समिति का अन्तिम लक्ष्य है।

रंग बदलती जीवन धारा

कमल की चतुर्थ कक्षा की परीक्षा उत्तीर्ण हुई और उसकी पढ़ाई को पूर्ण विराम मिला। माँ के साथ सभी गृहकार्यों में वह सहभागी होने लगी। उसी समय प्लेग का तांडव चल रहा था। दाते परिवार धंतोली के गोरक्षण परिसर में रहने के लिये आया। गोरक्षा के लिये श्री चौंड़े महाराज द्वारा एक बड़ा अभियान आयोजित किया गया था। कसाईखाने में गायें नहीं जानी चाहिये, इसलिये वे बहुत प्रयास कर रहे थे। इतना ही नहीं तो ऐसी गायों के भरण-पोषण की व्यवस्था भी वे करते थे, इस कार्य के लिये समाज से भिक्षा मांगते थे। दाई भी इस कार्य में सहयोग करती थी। भिक्षा के लिये जाते समय कमल को अपने साथ ले जाया करती थीं। उनके अनेक प्रकार के अनुभव कमल देखती थी। क्या बोलना है, कैसे बोलना है, अच्छे काम के लिये अपमान कैसे शांत चित्त से सहन करना पड़ता है इसका निरीक्षण कमल करती थी। मन ही मन भाव संग्रहीत करती थी।

दाई प्रसूतिकार्य बड़ी कुशलता से करती थी। उन्होंने कभी जातिपाँति का विचार नहीं किया। कोई भी महिला हो बड़ी तत्परता से दौड़कर वह जाती थी। समाज-सेवा का भेद-भाव न करने का संस्कार, कमल के मन पर दृढ़ता से अंकित होता गया। दाई के मार्गदर्शन में रुग्णशुश्रुषा का पाठ कमल ने आत्मसात् किया।

प्लेग के प्रकोप से अनगिनत लोगों की मृत्यु हुई। उनकी अंत्यक्रिया करने के लिये भी लोग उपलब्ध होना कठिन था। संसर्ग के भय से लोग बहाना बनाकर आना टालते थे। परन्तु भास्करराव किसी भी तरह की आशंका मन में न रखते हुए इस कार्य के लिये जाते थे। कभी-कभी तो उनको भोजन के लिये भी समय नहीं मिल पाता, परन्तु वे चिढ़ते नहीं थे। कमल का मन यह सब ग्रहण करता था।

उस समय की रुढ़ि के अनुसार कमल के लिये वर-संशोधन प्रारंभ हुआ। विवाह के बाजार में स्वरूप-सुन्दरता के साथ धन का भी महत्व था। अधिक से अधिक दहेज प्राप्त करने का लालच समाज में था। कन्या-विवाह एक प्रकार की कठिन आपत्ति ही मानी जाती थी। कमल की समझ में ये सारी बातें आने लगी। कुसुमकोमल, सुन्दर कमल के विवाह में दहेज से आने वाली कठिनाई उसके माता-पिता की चिंता का विषय बनी है, यह कल्पना उसको पीड़ा दे रही थी।

एकदिन यशोदाबाई रोटी बना रही थी। घर में और कोई नहीं था। उनके पास जाकर कमल ने मन्द स्वर में पुकारा, 'माँ' यशोदाबाई ने कमल की ओर देखा। कमल के मन के भाव उसके चेहरे पर प्रकट हुए थे।

"क्या बात है, कमा ?" रोटी बेलते-बेलते मुख से स्त्रोत्रपाठ कर रही माँ ने थोड़ा रुक कर कमल से पूछा। कमल का कोई उत्तर नहीं आया तो माँ ने फिर से ऊपर देखा कमल का चेहरा गम्भीर था। कुछ निश्चय भी दिखाई दिया।

'कमा, श्यामा के घर जाना है क्या ?

'नहीं, माँ' कमल ने उत्तर दिया ?

'फिर क्या चाहिये तुझे ?'

'माँ, अण्णा से कहना कि लड़के वालों से पूछने न जाय। वे लोग तो बहुत ही दहेज मांग रहे हैं न माँ ऽऽ।

'कमल, लड़की के हाथ पीले करना है तो दहेज देना ही पड़ता है। हम कैसे भी हों, व्यवस्था कर लेंगे। तुझे चिंता करने की आवश्यकता नहीं है। छोड़ दो यह सब।'

'वह स्नेहलता की कहानी पढ़ी ना, तबसे ही मैंने निश्चय कर लिया है, माँ ऽऽ कि दहेज लेने वाले लड़के के साथ मुझे विवाह करना ही नहीं है।'

अब यशोदाबाई ने चकला बेलना दूर करते हुए कमल की ओर देखा और प्रेम से अपने बाहुपास में ले लिया। कमल के कथन पर आश्चर्य व स्नेह की भावना उनकी दृष्टि से झलक रही थी।

सृष्टिचक्र चल रहा था। कई रातें कई दिन बीत गये। १९१९ ईसवी का प्रारम्भ हुआ। दाते परिवार में आनन्द भर गया। कमल का विवाह निश्चित हो गया था। वह भी उसकी शर्तों पर। अपनी कन्या का विवाह हो रहा है, इसका आनन्द और अपनी यह गुणवती कन्या अब परायी बनेगी, दूर जायेगी, इसका दुख इस प्रकार की संमिश्र भावनाओं का खेल चल रहा था।

कमल दाते, वर्धा के सुविख्यात केलकर परिवार में पुरुषोत्तमराव की गृहलक्ष्मी बन कर आयी। उसका नाम भी

रखा गया लक्ष्मी-शोभा बढ़ानेवाली। लक्ष्मी को पत्नीपद के साथ-साथ मातृपद को भी स्वीकार करना पड़ा। पुरुषोत्तमराव की प्रथम पत्नी की दो कन्याओं-शांता और वत्सला-की वह माँ बनी। अपनी माँ के वियोग से इन कन्याओं का मुरझाया हुआ मानसपुष्प लक्ष्मी के सहज स्नेहजलसिंचन से पुनश्च प्रसन्न हो गया।

बाल्यकाल में अपने छोटे भाई-बहनों की देखभाल करने का अभ्यास कमल को था ही। अपने स्नेहमय व्यवहार से कमल (लक्ष्मी) ने इन दोनों बालिकाओं का मन जीत लिया। नये परिवार के साथ समरस होते हुए कमल ने कुशलतापूर्वक यह साध लिया। कमल की आयु भी क्या थी ? केवल चौदह साल की। माँ के घर में हँसना, खेलना, दौड़ना मुक्त मन से कार्य करने की कमल की प्रकृति थी। यहाँ केलकर परिवार की खानदानी रीति अलग ही थीं। महिलाओं की आवाज भी बाहर के कमरे तक नहीं आनी चाहिये। फिर महिलाओं का बाहर जाना तो सोच ही नहीं सकते। पुरुषोत्तमराव का स्वभाव शौकीन था - उदार भी था। वे बिलियर्ड बहुत कुशलता से खेलते थे। उनके इस प्रकृति के कारण उनके मित्र उन्हें 'सरदार' कहते थे।

कमल (लक्ष्मी) की 'केसरी' पढ़ने की, देशकी परिस्थिति अंग्रेजों की जुल्मजबरदस्ती पर चर्चा करने की आदत थी। यहाँ तो क्लब-खेल और खानदान दोनों का प्रभाव था। इस नये परिवेश के साथ कमल को समरस होना था। वह करते-करते उसने अपनी मन की चिनगारी को बुझने नहीं दिया। दक्ष गृहलक्ष्मी तथा स्नेहमयी माँ की भूमिका सहजता से

निभाने का संकल्प उसने पूरा किया। कमल की माँ को चिंता थी कि कमल का ससुराल में कैसा निर्वाह होगा ? दोनों घर का वातावरण, सांपत्तिक स्तर, उसके कारण आनेवाले बंधन क्या कमल यशस्वी होगी ? यशोदाबाई को अपने दिये हुए संस्कारों पर भी विश्वास था। कमल ने माँ को अपनी सर्वजयी-वृत्ति से आश्वस्त किया।

कमल को फूलों में बहुत रुचि थी। उनके पति पुरुषोत्तमराव को बालों में फूल गूँथना बिलकुल पसंद नहीं था। खानदानी महिलाओं ने फूल नहीं लगाना चाहिये ऐसी उनकी धारणा थी। लक्ष्मी का पुष्पप्रेम अन्य रीति से प्रकट हुआ। उसने अपनी दो पुत्रियों-शांता और वत्सला, के चोटी में फूलों की माला बना कर सजाना प्रारम्भ किया। लड़कियों की लम्बे बालों की चोटियां फूलमाला लगाने पर अच्छी दिखती थीं। पुरुसोत्तमराव यह देख रहे थे। एक दिन उनसे रहा नहीं गया। लक्ष्मी को उन्होंने डांट दिया—'तुम्हें पता नहीं अपने घर की बालिकाओं ने बालों में फूल लगाना मुझे अच्छा नहीं लगता ? तुम क्यों शांता, वत्सला की चोटियाँ फूलों से सजाती हो ?'

उनके ये शब्द पूरे होते ही लक्ष्मी ने उनकी ओर स्थिर और सस्मित दृष्टि से देखते हुए दृढ़निश्चयी स्वर में कहा, 'मैं' जानती हूँ आपको यह पसन्द नहीं है। इसलिये तो मैंने अपनी रुचि को मोड़कर अपने बालों में फूल लगाना छोड़ दिया। आपकी पत्नी के नाते मैंने यह स्वीकार किया है। परन्तु आप सोचिये, ये बालिकाएँ छोटी हैं। इनकी फूलों में रुचि है। अगर इनके विवाह के पश्चात् इनके पति को आपकी

तरह फूलों में अरुचि होगी, तो इनका फूलों का शौक वे कब पूरा करेंगी ? अपने ही घर अपना यह शौक पूरा करना, क्या गलत बात है ? मैं उनकी माँ हूँ, इसलिये उनकी इतनी बातें, मानना मेरा कर्त्तव्य है । आप इसमें तो बुरा नहीं मानेंगे ?'

लक्ष्मी का यह तर्कनिष्ठ प्रस्ताव पुरुषोत्तमराव को मानना पड़ा, इतना ही नहीं तो वे आश्वस्त हुए कि लक्ष्मी इन बालिकाओं को सचमुच माँ का स्नेह दे रही है ।

शांता और वत्सला की चोटियां फूलों से सजायी जाती रहीं । 'वहिनी' ने अपने पिताजी से जो युक्तिवाद किया, उसी के फलस्वरूप अपनी इच्छा पूरी हो रही है यह वे समझ गयीं । लक्ष्मी के देवर उसको 'वहिनी' (भाभी) सम्बोधित करते थे, इसलिये ये बालिकाएँ और बाद में उनके पुत्र भी उन्हें इसी नाम से सम्बोधित किया करते थे ।

दिन बीते जा रहे थे । १९२० ई० में केलकर परिवार ने एक आनन्द का दिन देखा । राखी के लिये, भाई-दूज के दिन मंगलारती करने के लिये, शांता वत्सला को एक भाई मिला । पुत्रजन्मोत्सव का आनन्द, केलकर परिवार ने मनाया । बाल मनोहर का रूपरंग सचमुच मनोहारी था । मनोहर की बाल-लीला में सभी रंग गये ।

केलकर परिवार बड़ा था । तीनों भाई एकत्रित रहते थे । जेठानी उमाबाई मार्गदर्शक थी । खेतीबाड़ी, जमीन थी । समय बेसमय खेती के देहात से, नौकर और अन्य लोग आते थे, वहीं रहते थे । रिश्तेदारी भी बड़ी थी । बैरिस्टर अभ्यंकर जैसे लोगों का भी नित्य आना-जाना रहता था । ऐसे सामाजिक कार्यकर्ता जब आते थे, तब अपना काम करते हुये लक्ष्मी उनकी

चर्चा सुनती थी। देश की बदलती परिस्थिति समझने का प्रयत्न करती थी। बाल्यकाल में प्रज्वलित देशभक्ति की ज्योति, ज्योतित रखने का प्रयास लक्ष्मी करती रही।

उन दिनों प्रतिष्ठित घर की महिलाएँ भगिनी-मण्डल, क्लब आदि में जाया करती थीं, अपने मनोरंजन के लिये। वर्धा में भी बजाज,बोहेरे आदि परिवारों की महिलाएँ एकत्रित होती थीं, ब्रिज खेलती थीं। हलके-फुलके मनोरंजन के कार्यक्रमों द्वारा अपना मन बहलाती थीं। केलकर परिवार की महिलाओं का वहाँ जाना स्वाभाविक था–अपेक्षित भी। लक्ष्मी को भी उस क्लब में आमंत्रित किया गया। उसने भी वहाँ जाना प्रारंभ किया। परन्तु लक्ष्मी का मन वहाँ लगा नहीं। देश पराधीन है। विदेशी शासन का अत्याचार हो रहा है स्वाधीनताप्राप्ति के लिये कितने तरुण-तरुणियाँ अपने जीवन का होम कर रही हैं और हम अपने मनोरंजन में मग्न हैं। ताश खेल रही हैं ? लक्ष्मी के मन में तूफान उठता था। हम शोभा की गुड़ियाँ क्यों बनें ? हम तो अग्नि की चिनगारी हैं। क्या देशभक्ति की ज्योति नहीं जला सकेंगे ? इन महिलाओं में लक्ष्मी सबसे छोटी थी। उनकी दृष्टि से अनुभवी थी। एकदिन साहसपूर्वक उसने अपने मन की बात प्रकट की। धीरे-धीरे वहाँ समाचारपत्र, वाचनीय पुस्तक पढ़ना प्रारम्भ हुआ। कभी-कभी देशकालपरिस्थिति की चर्चा होने लगी। लक्ष्मी को थोड़ा समाधान हुआ।

★

सुख-दुख को छाँह में

वरदा (वर्धा) नदी के किनारे बसा वरदा (वर्धा) नगर। सचमुच अनेक लोगों को वहाँ ध्येयनिष्ठ जीवन का वरदान प्राप्त हुआ। महात्मा-गांधीजी ने अपने आश्रम के लिये यही परिसर पसन्द किया और वहाँ से चेतना का नया संचार हुआ। देशभर के स्वतंत्रताप्रेमी लोगों का, कार्यकर्ताओं का अविरल आना-जाना होने लगा। लोकमान्य तिलकजी की मृत्यु के पश्चात् स्वाधीनता-आन्दोलन के सूत्रसंचालन का दायित्व गांधीजी पर स्वाभाविकता से आ गया।

१६२४ की बात है, वर्धा में एक विशाल सभा का आयोजन हो रहा है. यह वार्ता लक्ष्मी को सुनायी पड़ी। उसमें सम्मिलित होने के लिये उसका मन तड़पने लगा। वहाँ जाने के लिये अनुमति कैसे प्राप्त करे ? लक्ष्मी ने अपनी देवरानी को तैयार किया, बाद में अपनी जेठानी के पास जाकर नम्रतापूर्वक पूछा क्योंकि उमाबाई का शब्द परिवार में प्रमाण था। जी, मैं और शांताबाई आज सभा में जाऊँ ? वहाँ बड़े-बड़े लोग आने वाले हैं। अपने देश की स्वाधीनता के प्रयत्नों के बारे में बोलेंगे, वह हम सुनेंगे। सभा समाप्त होते ही लौटकर आजायेंगे।'

लक्ष्मी की नम्र ऋजु-भाषा में की हुई प्रार्थना टालना उमाबाई को असम्भव हुआ। लक्ष्मी की काम करने की गति,

क्षमता, उसका व्यवहार आदि सभी पर उमाबाई खुश थीं। अपनी गुणवती लाड़ली देवरानी को उन्होंने सभा में जाने की अनुमति दी और कहा कि घर में छोटा बालक है यह ध्यान में रखना। लक्ष्मी को बहुत आनन्द हुआ। वह अपनी देवरानी को लेकर सभा में गयी।

सभा में अतीव स्फूर्तिदायी, भावनास्पर्शी भाषण हुए। जनमानस पर काफी प्रभाव हुआ। सभा के अन्त में स्वाधीनता आन्दोलन के लिये आवाहन किया गया। स्वयं सेवक झोली लेकर सभा में घूमने लगे। महिलाओं के बीच अकार भी वे आवाहन करते रहे। लक्ष्मी ने झट से अपने गले की सोने की कण्ठी उतारकर झोली में डाल दी। यह देखकर शांताबाई ने भी अपनी माला दे दी। आश्रम के साथ एक नया स्नेहभाव निर्माण हुआ।

लक्ष्मी, शांताबाई दोनों घर लौटीं। सभा के वातावरण का प्रभाव अभी भी मन पर था। अपनी जेठानी को भावभीने शब्दों में सभा के भाषणों का सारांश बताया, और दोनों ने अपनी मालायें दे दीं, यह भी बताया। केलकर परिवार की दृष्टि से दो मालाओं का कोई महत्त्व नहीं था। तो देश के साथ जुड़ने का संस्कार हुआ, इसका महत्त्व था। उमाबाई ने सब सम्हाल लिया।

अब लक्ष्मी और शांताबाई दोनों बड़े उत्साह से प्रभात फेरी, सूतकताई, सभा आदि कार्यक्रमों में भाग लेने लगीं। पुरुषोत्तमराव को यह पसंद नहीं था। परन्तु लक्ष्मी उनके सब काम इतनी तत्परता से करतीं थीं कि अपनी नाराजी प्रकट करने का अवसर ही उन्हें मिलता नहीं था। प्रभातफेरी

से लौटते ही पुरुषोत्तमराव की मन पसन्द चाय बनाकर इतनी ऋृजुता से देती थीं कि वे प्रसन्न हो जाते। सभा से आने के पश्चात्, लक्ष्मी घर का काम बड़ी तेजी से और उत्कृष्ट रीति से करतीं थीं जिससे उमाबाई को भी कोई शिकायत नहीं रहती थी।

मनोहर थोड़ा बड़ा हुआ तो पद्माकर, रत्नाकर कमलाकर का जन्म हुआ। लक्ष्मी के कार्य में तात्कालिक व्यवधान तो आता था परन्तु वह स्वयं को सम्हाल लेतीं। पारिवारिक दायित्व निभाते-निभाते अपना सामाजिक दायित्व निभाने का उसका प्रयत्न चल रहा था।

कालचक्र की गति को कौन रोक सकता है? अपनी गति के दौरान वह क्या जोड़ेगा, क्या तोड़ेगा, कोई नहीं कह सकता। १९३२ ईसवीं का प्रारम्भ हुआ। 'आनन्द' का जन्म हुआ, उसके पश्चात् लक्ष्मीबाई पर संकटों की बौछार प्रारम्भ हो गयी।

पुरुषोत्तमराव का स्वास्थ्य कुछ दिनों से नरम चल रहा था। जो अब बारंबार बिगड़ने लगा। कभी बुखार तो कभी खाँसी, कमजोरी बढ़ती गयी। कई प्रकार की औषधि योजना की गयी। अन्तमें उनकी बीमारी का निदान किया गया। राजयक्ष्मा (टी० बी०) जिसका नाम लेते ही उन दिनों, मृत्यु की छाया सी छा जाती थी। आज जैसे उपचार उस समय उपलब्ध नहीं थे। फिर भी जो कोई उपाय बताये जाते वे सारे उपाय लक्ष्मी करतीं रहीं। मानवी प्रयत्नों के साथ-साथ दैवी आराधना में भी कमी नहीं रही। औदुम्बर वृक्ष को एक

लाख प्रदक्षिणा भी उन्होंने की। कई प्रकार के व्रतों के कारण लक्ष्मी को आत्मबल तेज, प्राप्त हुआ, जो उनको भविष्य में काफी लाभप्रद रहा। पति की खतरनाक बीमारी, दो कन्याएँ, छह पुत्रों के संगोपन का दायित्व, जमीन-खेती, सम्पत्ति की देखभाल लक्ष्मी कैसे करेगी? इससे पुरुषोत्तमराव चिंतित होते थे, परन्तु उनका विश्वास था अपनी भाभी पर। एकदिन उमाबाई को अपने पास बुलाकर उन्होंने कहा—'भाभी, मैं अब अधिक दिन नहीं रहूँगा। मेरी हालत से हो यह स्पष्ट हो गया है। भाभी! मुझे एक वचन दोगी?'

'क्या है आपकी इच्छा? मैं वह पूरी करूँगी। पर आप ऐसे निराश क्यों होते हैं? आपको शीघ्र ही आराम पड़ेगा।'

'नहीं, भाभी! समय बहुत कम है। मृत्यु की छाया मँड़राती हुई मैं देख रहा हूँ। मेरे पश्चात् लक्ष्मी और सभी बालकों को आप स्नेहछत्र दोगी, यही आग्रह है भाभी?' बोलते बोलते पुरुषोत्तमराव का कंठ अवरुद्ध हो गया। उमाबाई ने उनको आश्वस्त किया।

नियति की इच्छा कौन टाल सकता है? लक्ष्मी की पति सेवा, भगवान की प्रार्थना, उमाबाई का स्नेह, सतत औषधोपचार को असफल बनाते हुए कुछ ही दिनों में पुरुषोत्तमराव की जीवन ज्योति शांत हो गयी। केलकर परिवार शोकसागर में डूब गया। लक्ष्मी पर तो विद्युत्पात हुआ। उसकी आयु केवल सत्ताईस साल की थी। परिवार बड़ा, बच्चे छोटे, विलोभनीय सौन्दर्य। ऐसी अवस्था में उसको बल मिला अपने ईश्वर से. सात्विक आत्मबल, आत्मविश्वास

को और साथ मिला बहिन जैसी प्रेम करने वाली अपनी जेठानी उमाबाई का।

पुरुषोत्तमराव के स्वर्गवास के पश्चात् उमाबाई ने लक्ष्मीबाई को अपने गले लगाकर कहा, 'लक्ष्मी ! जिनके लिये हम इस परिवार में आये, वे दोनों भी नहीं रहे। अब अपना नाता जेठानी-देवरानी का नहीं रहा। अब हम हैं बहनें-बहनें जो अन्त तक एक दूसरे को संभालती रहेंगी।' पुरुषोत्तमराव तथा लक्ष्मी को दिया हुआ वचन उमाबाई ने जीवन पर्यन्त निभाया।

सम्पत्ति, जमीन का हिसाब-किताब क्या होता है, दोनों ने कभी देखा नहीं था। अब यह भार लक्ष्मी को ही उठाना था। उसने ध्यान देना प्रारम्भ किया तो पता चला कि जमीन तो बहुत है परन्तु उस मात्रा में नकद पैसे कम हैं। दैनन्दिन घर खर्च के लिये तो पैसे की नितांत आवश्यकता थी। उसकी क्या व्यवस्था करें ? प्रश्न-चिन्ह खड़ा था। इस अवस्था में लक्ष्मी ने अपना धैर्य नहीं छोड़ा। सोच-विचार कर प्रतिष्ठा की झूंठी दिखावट न दिखाते हुए लक्ष्मी ने अपना स्त्रीधन बेच दिया। प्राप्त राशि से घर की दुरुस्ती की और अपने घर का कुछ हिस्सा किराये पर दिया। कुछ लोगों ने आलोचना की कि यह सब केलकर खानदान को शोभा नहीं देता है। अब महिलाएँ ढीठ बनी हैं—सब कुछ अपने मन से करने लगीं हैं आदि-आदि। परन्तु लक्ष्मी का निश्चय पक्का था। बाहरी दिखावटी प्रतिष्ठा के पीछे दौड़कर कर्ज में फंसना और ढोंगी हित-चिंतकों के जाल में फँसना, लक्ष्मी ने कभी स्वीकार नहीं किया।

अपनी खेतीके लिए ग्राम के एक होनहार लड़के दत्तू वैशंपायन को लक्ष्मीबाई ने अपने पास बुलाया, उसको प्रोत्साहित किया और उसकी सहायता से खेती, जायदाद स्वयं देखना प्रारम्भ किया। नियति लक्ष्मी की हर प्रकार से परीक्षा ले रही थी। उसकी ज्येष्ठ पुत्री शान्ता को बीच-बीच में बुखार आने लगा। राजयक्ष्मा की बीमारी ने शान्ता को जकड़ लिया था। मानो पिता की सेवा करते हुए उनकी वेदना देखना असम्भव होने के कारण, उनकी बीमारी उसने अपनी ओर खींच ली हो। उसके स्वास्थ्य के लिये लक्ष्मी ने प्रयत्नों की पराकाष्ठा की। उनको निष्फल बनाकर शान्ता भी चल बसी। केलकर परिवार पर यह दूसरा कठोर आघात हुआ। दुःख की तीव्रता कम होने के लिये काल जैसी और कोई औषधि नहीं है। लक्ष्मी के मन में जो गये उनके लिये तो बड़ा दुःख था परन्तु परिवार के अन्य लोगों की देखभाल करने का महान् दायित्व भी निभाना था। जो लोग जीवित हैं, उनकी देखभाल करने का कर्तव्य उससे भी बड़ा था।

वत्सला को पढ़ने में बड़ी रुचि थी। वर्धा में ऐसा विद्यालय नहीं था। जहाँ वह पढ़ सके। नियति के अलावा लक्ष्मी कभी किसी के सामने नहीं झुकी। परिस्थिति से अपनी पूरी शक्ति के साथ वह जूझती रही। वत्सला की पढ़ने की इच्छा पूरी करने के लिये एक शिक्षक घर पर ही आने लगे। अकेली वत्सला की व्यवस्था तो हो गयी। परन्तु वत्सला जैसी पढ़ने की उत्सुक अनेक बालिकाएँ थीं। उनकी इच्छा कैसे पूरी होगी ? यह प्रश्न लक्ष्मी को बेचेन करता रहा। अपनी देवरानी से लक्ष्मो ने विचार विमर्श किया। कुछ महानुभावों से चर्चा की। बालिका विद्यालय की वर्धा में

आवश्यकता का आग्रह रखा और वर्धा में एक माध्यमिक कन्या विद्यालय का प्रारम्भ हुआ। आज वही विद्यालय 'केसरीमल कन्या विद्यालय' इस नाम से सुप्रतिष्ठित है। उसके कार्यकारी मण्डल में प्रथम लक्ष्मी की देवरानी और बाद में स्वयं लक्ष्मी का अंतर्भाव था।

विद्यालय प्रारम्भ हुआ। प्रश्न था शिक्षिकाओं की व्यवस्था का ? उस समय दूसरे नगर में जाकर नौकरी करने वाली महिलाओं की संख्या नहीं के समान थी। लक्ष्मीबाई की इच्छा-शक्ति प्रबल थी। संयोग से ऐसी गुणवत्ता प्राप्त शिक्षिकाओं ने वर्धा में आने की तैयारी दिखायी। अब प्रश्न था उनकी निवास व्यवस्था का। वेणुताई कलमकर और श्रीमती कालिंदीताई पाटणकर ये दो शिक्षिकाएँ अपने अपत्यों के साथ आने वाली थीं। उनको सुरक्षित निवास स्थान उपलब्ध होने पर ही वे आ सकती थीं। लक्ष्मीबाई ने एक प्रस्ताव रखा कि ये बहिनें केलकर परिवार में रहेंगी। जिनको कभी देखा नहीं था ऐसी बहिनों को अपने घर में रखने का साहस लक्ष्मीबाई ने दिखाया। उसके पीछे एक लगन थी— बालिकाशिक्षा को प्रोत्साहित करना, मन में निश्चय करने के पश्चात् उसे पूरा करने के लिये लक्ष्मीबाई ने हर प्रकार के प्रयास किये, वे पीछे कभी हटी नहीं।

थोड़े ही दिनों में वेणुताई, कालिंदीताई, लक्ष्मीबाई का संयुक्त परिवार बन गया। भविष्य में देश का विशाल परिवार बनाने के व्रत का यह मानो शुभारम्भ था।

तैरना, साइकिल चलाना आदि का जीवन में कितना उपयोग हो सकता यह समझकर लक्ष्मीबाई ने उसको आत्मसात् किया।

कालचक्र अपनी गति से चल रहा था। लक्ष्मीबाई के विचारों में प्रौढ़ता आ रही थी। मन अंतर्मुख होने लगा। विचारप्रवर्तक वाचन और मनन चल रहा था। बाल्यावस्था में प्राप्त देशभक्ति का भाव पुन: प्रबल हो रहा था। सेवाग्राम के कार्यक्रमों में सूत कताई, प्रभात फेरियाँ, सभा आदि में वे सम्मिलित होने लगीं।

सेवाग्राम आश्रम में सायं प्रार्थना के पश्चात्—'हरिजन' पत्र के कुछ अंश का वाचन और प्रश्नोत्तरी भी होती थी। एकदिन नित्य के अनुसार प्रार्थना हुई। अपने चिंतन-परक भाषण में बापूजी ने नारी शक्ति के बारे में कुछ विचार प्रकटी किये। उन्होंने कहा, "अपने भारत की महिमा तभी बढ़ेगी जब यहाँ की स्त्री सीता बनेगी। प्रत्येक भारतीय स्त्री सीता बनेगी, तो इस देश का चित्र बदल जायेगा। अत: सीता की पवित्रता, आत्मबल, निष्ठा, प्रेरणा शक्ति आदि गुण प्राप्त करने का संकल्प हर स्त्री करें, यही मेरी प्रार्थना है।"

उस सभा में उपस्थित एक युवती खड़ी हो गयी और उसने बापूजी से प्रश्न किया 'बापूजी, आप हमें सीता बनने के लिये कह रहे हैं, तो पुरुषों को भी राम बनने के लिये क्यों नहीं कहते ?" चूल्हा-चौका के दायित्व के बहाने जिनको घर में बाँध कर रखा था, रूढ़ियों के बंधन से जो हतबल हुई थीं, ऐसी स्त्रियों की प्रतिनिधि बनकर, उस युवती ने यह प्रश्न पूछा।

था। आदर्शों का पालन केवल स्त्री ही करें ? अनेक बहिनों को इस प्रश्न से मन ही मन आनंद हुआ। बापूजी क्या उत्तर देते हैं यह सुनने के लिये वे उत्सुकता से देख रहीं थीं।

बापूजी ने मंद स्मित किया। अपने शांत, संयत स्वर से उन्होंने कहा—'बेटी, मैं पुरुषों को राम बनने के लिये नहीं कहूँगा।

क्यों ?' उस युवती ने बापूजी की बात काटते हुए पूछा—

'बेटी ! इस देश में सीताजी की प्रेरणा से ही श्रीराम बनते हैं।' सीता का निर्माण होगा, तो राम के निर्माण के लिये अलग प्रयत्न करने की आवश्यकता ही नहीं होगी।

समय हो गया था, इसलिये सभा समाप्त हुई। लक्ष्मीबाई उन तरुण बालिकाओं को लेकर लौटी मन में गूंज रहे थे बापूजी के शब्द। बापूजी ने कहा है, तो इसमें निश्चित तथ्य है। वह जानने के लिये श्रीरामायण का पठन और चिंतन उन्होंने प्रारम्भ किया।

उस समय ऐसी सामान्य धारणा थी कि महिलाओं ने रामायण, महाभारत जैसे ग्रंथ नहीं पढ़ने चाहिये। इतना ही नहीं तो ये ग्रंथ घर में नहीं रखने चाहिये, क्यों कि गृहकलह निर्माण होती है। लक्ष्मीबाई को ये ग्रंथ प्राप्त कर, घर में पढ़ने में बड़ी कठिनाई हुई। प्रथम तो उन्हें मिला मराठी ग्रंथ 'रामविजय'। श्रीधर कवि का यह धारावाही और भक्ति-भाव से लिखा हुआ 'काव्य' है। लक्ष्मीबाई को इस ग्रंथ ने नव-चैतन्य प्रदान किया। उनका उत्साह इतना बढ़ा कि रामायण

के सभी ग्रंथ पढ़ने की प्रेरणा निर्माण हुई। तुलसी रामायण आध्यात्मरामायण, भावर्थरामायण, आदि ग्रन्थ लक्ष्मीबाई ने एक के पीछे एक पढ़ लिये। रोज नियम पूर्वक इन ग्रंथों का वाचन होता रहा। समाचारपत्रों के समाचारों से प्रक्षुब्ध मन को शांति मिलने लगी। महिलाओं के अपहरण की घटनायें तो नित्य घटती आयी हैं। आज भी वही सिलसिला चल रहा है। यह कौन, कैसे रोक सकेगा? क्या महिलाओं के सम्मान की पुन: प्रतिष्ठापना करना इतना कठिन है?

मन में विचारों की उथलपुथल हो रही थी।

★

जीवन ध्येय की खोज में

एक दिन नागपुर से कुछ लोग आये थे। बातों-बातों में विषय चला वहाँ के संतरा बाजार का वहाँ के दलालों से महिलाएँ संतरे बेचने के लिये ले जाती थीं। संतरा बेच कर आयी हुई राशि घर में ही खर्च हो जाती थी। दलाल को बिक्री के पैसे नहीं दे सकने के कारण उन पर कर्ज चढ़ता ही रहता। दरिद्रता के कारण वह चुकाना भी संभव नहीं था। इसलिये वे विधर्मी दलाल उन महिलाओं की तरुण बहू-बेटियों को कर्ज के बदले में माँगते थे। ऐसी भ्रष्ट युवतियों के लिये घर का दरवाजा बन्द हो जाता था। वे असहाय तरुणियाँ कहाँ जाँय ? हिन्दू महासभा के डॉ० मुंजे जैसे कर्मठ कार्यकर्ता हिन्दुओं पर होने वाले अत्याचार का पता लगते ही प्रतिकार के लिये दौड़ पड़ते थे, लड़ते थे। उन्होंने भी इन अपमानित महिलाओं को सुप्रतिष्ठित करने का प्रयास किया। फिर भी इन महिलाओं का स्वीकार करने हेतु समाज तैयार नहीं हुआ।। उनकी क्या व्यवस्था करें ? अपनी बहिनों की ऐसी दुरावस्था का पता होने पर लक्ष्मीबाई बेचैन होने लगी। इन बहिनों का दोष न होने पर भी उनको इतना कठोर दण्ड क्यों दिया जाता है ? मन में पीड़ा थी।

गृहकार्य से निवृत्त होकर वे रामायण पढने के लिये बैठीं, विषय वही था—'सीताजी का अपहरण'। श्रीराम जैसे महापराक्रमी पति, लक्ष्मण जैसे दक्ष देवर होने पर भी सीता जी का अपहरण हुआ। फिर संतरा बाजार की गरीब,

सामान्य परिस्थिति में रहने वाली निराधार महिलाओं का कौन तारनहार होगा ? मन से यह विचार, प्रयत्न करने पर भी हटता नहीं था। रामायण में रावण द्वारा सीताजी को परेशान करना और अपने अपरिमित आत्मबल पर सीताजी का रावण को तुच्छ मानना, घृणा प्रकट करना, उसके सारे मनोरथ असफल बनाना, यह क्यों हो सका ? सीताजी को, ना सेना, ना देवर, ना पति का सहाय्य था। लक्ष्मीबाई को यह प्रतीत हुआ कि सीताजी अपने आत्मबल के आधार पर ही स्वयं को सुरक्षित रख सकीं। आज हम यह आत्मबल कैसे निर्माण करें ? केवल महिलाओं का ही नहीं तो पूरे समाज का आत्मबल कैसे बढ़ायें इसका चिन्तन चल रहा था। स्वामी श्रद्धानंदजी जैसे कर्मठ, हिंदुत्वनिष्ठ कार्यकर्ता की दिन दहाड़े हत्या हुई फिर भी हम कुछ नहीं कर सके। हिंदु-समाजपुरुष की यह तंद्रा कैसे दूर करें ? इस अग्नि पर जमी हुई राख को हटाकर स्वत्व, स्वाभिमान की अग्नि कैसे प्रकट करें ? लक्ष्मीबाई इन विचारों में खो जाती थीं।

'लक्ष्मी' तुम कितनी सोचती रहती हो ? अरी, हम महिलाएँ क्या कर सकती हैं? छोड़ो यह सब, देखो अपने बच्चों की ओर, उनकी चिंता करो, उन्हें अच्छा बनाओ" उमाबाई कहा करती थीं।

आज कल मनोहर आंगन में नहीं खेलता था। अन्य लड़कों को लेकर कहीं जाया करता था। एक दिन उसने दंड खरीदने के लिये पैसे मांगे 'वहिनी' से। मनोहर के पीछे खड़े थे पद्माकर दिनकर। उन्होंने भी बड़े उत्साह से कहा— 'हाँ, हाँ, वहिनी ! हम सभी को दंड खरीदना है"

किस लिये चाहिये तुम्हें दण्ड ? क्या मारपीट करनी है ?

'नहीं, वहिनी ! हम मारपीट नहीं करेंगे। हमें तो शाखा में दंड पकड़ कर एक-दो के ताल पर चलाना सिखाते हैं।

वहिनी, केवल इतना नहीं तो दण्ड चलना भी सिखाने वाले हैं। हम तो दण्ड पकड़ कर यूं चलेंगे शान से। कोई हमें पीटने के लिये आयेंगे, तो ऐसा जोर से पीटेंगे कि वह भाग जायेगा।'

छोटे दिनकर वे कृति कर के दिखायी। बच्चों का उत्साह अपार था। वहिनी ने उनकी इच्छा पूरी की। शाखा में सीखे हुए प्रयोगों का अभ्यास, 'सावधान दक्ष' आदि अज्ञायें और देशभक्ति परक गीतों से घर गूंजने लगा। अपने पुत्रों के व्यवहार में होता हुआ परिवर्तन, लक्ष्मीबाई देख रही थीं। हिंदू, हिंदुस्थान, हिंदू भावना का उच्चारण व्यवहार प्रारम्भ हुआ। लक्ष्मीबाई ने संघशाखा के बारे में पूछताछ जारी रखी थी। उसके मन को सताने वाले प्रश्न का उत्तर उसे अचानक मिल गया।

हिन्दू परम्परा का अभिमान महिलाओं में भी निर्माण करेंगे तो हमें आत्मबल प्राप्त होगा। यह विचार केवल पुरुषों तक सीमित रखने से काम नहीं चलेगा। हम महिलायें तो समाज का आधा हिस्सा हैं। उन्हें जागृत करना, स्नेहभाव से एकत्रित करना आवश्यक है।

उसी समय लक्ष्मीबाई ने एक भीषण वार्ता समाचारपत्र में पढ़ी। 'करपलेले कुसुम' (मुरझाया पुष्प)। 'सावधान' में प्रकाशित इस घटना से लक्ष्मीबाई को दुःख हुआ चिढ़ भी हुई। अपने पति के साथ होते हुए भी गुण्डे एक स्त्री का अपमान करते हैं ? सड़क पर इतने लोग होते हुए भी कोई उसकी सहायता नहीं करता है ? 'कानून पढ़े-लिखे लोगों के लिये है। हम तो अपने बल से हमारी इच्छा पूरी कर लेते हैं यह गुण्डे कह सकते हैं ? उस स्त्री के प्रति आत्मीयता का भाव नहीं होने के कारण ही सब मूक दर्शक बने। अब तो महिलाओं ने ही अपनी सुरक्षा के लिये सिद्ध होना चाहिये। शरीर, मन, बुद्धि से स्त्री को समर्थ बनना पड़ेगा संवेदनशीलता, स्नेहभाव निर्माण करना है तो यह अकेले से कैसे होगा ? हम एकत्रित कैसे आ सकेंगी ? उनको दिखायी दिया अपने पुत्रों का दण्ड का अभ्यास। उन सबका एकत्रित आना-उत्साहभरे देशप्रीति के गीत गाना।

'वत्सला, हम भी सीखेंगे लाठी चलाना ?' एक दिन लक्ष्मीबाई ने पूछा। वत्सला को भी यह बात एकदम जँची। उसने जाकर अपने भाईयों से पूछा 'ए भय्या, हमें भी सिखाओ न, ये लाठी चलाना।

'नहीं, नहीं, हम ऐसे नहीं सिखायेंगे। हमें तो पूछना चाहिये।' संघ के अनुशासन से प्रभावित इन बन्धुओं ने उत्तर दिया। परन्तु जहाँ चाह वहाँ राह मिलती है।

एक दिन मनोहर ने कहा, 'वहिनी, आज हम शाखा से देरी से लौटेंगे कल हमारे डॉक्टरजी आने वाले हैं, हमें घर-घर सूचना देनी है।

मनोहर दिनकर के शाखा से आने के पश्चात् वहिनी ने उनसे पूछा—'दिना' क्या कार्यक्रम है कल ? क्या सूचना दी तुमने ?'

'हमारे पूजनीय सरसंघचालक, डॉ० हेडगेवारजी आने वाले हैं। स्वयंसेवकों के अभिभावकों से मिलना चाहते हैं। इस कार्यक्रम का स्थान और समय की सूचना घर-घर देनी थी।

'कार्यक्रम कितने बजे, कहाँ है ? वहिनी का अविर्भाव देखकर मनोहर ने पूछा—'वहिनी ! क्या आपका वहाँ आने का विचार है ?' 'वहिनी ! अभिभावक याने पिता या बन्धु—अर्थात् पुरुषों को बुलाया है,—महिलाओं को नहीं'—जल्दी-जल्दी में पद्माकर ने कहा। 'वहिनी ! वहाँ किसी भी स्वयंसेवक की माँ नहीं आने वाली है" दिनकर ने धीरे से कहा।

'औरों का मुझे पता नहीं। परन्तु हमारे पिता नहीं हैं, घर में और कोई पुरुष नहीं होने के कारण मैं ही तुम्हारी अभिभावक हूँ। इसलिये मैं वहाँ आने वाली हूँ।'

'वहिनी ! बिना अनुमति के आप कैसे आ सकोगी ? मैं अपने अधिकारियों से पूछ कर आता हूँ—मनोहर ने कहा।

उस समय संघ के ज्येष्ठ अधिकारी थे मा. श्री. आप्पाजी जोशी। उन्होंने अनुमति दी। कार्यक्रम के पश्चात् लक्ष्मीबाई ने पू. डॉक्टरजी से मिलने की इच्छा प्रकट की तो उन्होंने

वैसी व्यवस्था करने का आश्वासन दिया। आप्पाजी के घर में ही मिलने का निर्णय हुआ।

लक्ष्मीबाई को आनन्द हुआ इतने दिनों की मन की उथलपुथल प्रकट करने का अवसर प्राप्त हुआ हुआ था। मन में संकोच था, डॉक्टर जो जैसे श्रेष्ठ व्यक्ति के सामने कौन से शब्दों में अपने मन की व्यथा प्रकट करूँ—ऐसा प्रश्न था? परन्तु डॉक्टर जी के आश्वासक, धीरगम्भीर व्यक्तित्व के कारण वे अपनी भावनायें खुले मन से प्रकट कर सकीं।

पुरुषों के समान महिलाओं को भी जागृत होना चाहिये। मेरा पुत्र संघशाखा में जाता है तो वहाँ क्या करता है? आप जो संस्कार दे रहे हैं वह अति उपयुक्त और आवश्यक, भी हैं। फिर भी इसका महत्त्व माँ को भी समझना चाहिये।' इतना कहते हुए सरदार मेहेंदले के पुत्र का उदाहरण लक्ष्मीबाई ने बताया। कई दिनों का चिंतन शब्दरूप ले रहा था।

डॉक्टरजी ने शांति से सब सुन लिया। लक्ष्मीबाई की मनोव्यथा उनके ध्यान में आई। लक्ष्मीबाई की भावनाओं का आदर करते हुए उन्होंने कहा—लक्ष्मीबाई! आपके विचार तो अच्छे हैं, परन्तु आज ही इसके बारे में कुछ निर्णय लेना कठिन है। हम कुछ दिनों के पश्चात् फिर मिलेंगे। महिलाओं में राष्ट्र-भावना जाग्रत होनी चाहिये। उन्हें निर्भय आत्म-निर्भय भी बनाना चाहिये। इसलिये यह कार्य किस पद्धति से करना चाहिये इसका गहराई से विचार करना होगा।

सम्पूर्ण हिंदू समाज की प्रगति का विचार करने वाले डॉक्टरजी को, लक्ष्मीबाई द्वारा प्रस्तुत बिंदु विचारणीय हैं—ऐसा लगा। अतः दोनों मनीषियों की भेंट होती रही। कभी नागपुर में, कभी वर्धा में। विचारों का मंथन हुआ। मंथन के बिना नवनीत कभी प्राप्त हुआ है क्या ? लक्ष्मीबाई नागपुर में डॉक्टरजी के घर जाती तो उनको आती हुई देख कर वे सीढियां उतर कर नीचे आते थे। उनकी नम्रता, आत्मीयता देखकर लक्ष्मीबाई का मन आदर से भर जाता था। अपने बड़े भाई के पास जैसे बिना संकोच बातें करते हैं उसी प्रकार से चर्चा होती थी।

स्वामी विवेकानन्द के साहित्य में लक्ष्मीबाई ने पढ़ा था कि आत्मविश्वास पूर्वक उड़ान भरने के लिये गरुड़ पक्षी के दोनों पंख—समान रूप से शक्तिशाली होने चाहिये। वैसे ही समाजरूपी गरुड़ के दोनों पंख स्त्री और पुरुष सबल होने की आवश्यकता है। डॉक्टरजी से उन्होंने कहा, 'संघ शाखा में जाने से बालकों का शरीर सुदृढ़ और मन राष्ट्र-प्रेमी बनता है, यह मैं देख रही हूं। क्या स्त्री का भी शारीरिक और वैचारिक स्तर उन्नत नहीं होना चाहिये ? राष्ट्र तो स्त्री और पुरुष–दोनों का है। हमने भी अपना दायित्व निभाना चाहिये। समाज का आधा अंग दुर्बल रहे, यह कैसे चलेगा ? माताओं के मन तैयार होंगे तो ही वे अपने पुत्रों का मन तैयार करेंगी। क्या यह आपके कार्य के लिये भी लाभदायक नहीं होगा ? वैसे भी स्त्री का सब प्रकार से सुदृढ़ होना, स्त्री की दृष्टि से भी, आवश्यक है" लक्ष्मीबाई अपने मन के विचार बोल रही थीं।

'आप सिद्ध हैं इस कार्य दायित्व लेने के लिये ?" डॉक्टरजी ने अचानक पूछा। उनकी दृष्टि विचारमग्न थी। धीर-गंभीर स्वर में उन्होंने आगे कहा—'महिलाओं को अच्छे संस्कार देना, देशसेवा के लिये उनको तैयार करना आवश्यक है। परन्तु पुरुषों का और महिलाओं का संगठन कार्य पूर्ण रूप से, अलग ही होना चाहिये और भी एक बात है—मुझे तो स्त्री-जीवन का अनुभव नहीं है, आप अच्छी तरह से जानती हैं कि सामान्यत: ऐसा कहा जाता है चार महिलाओं का, एकसाथ- एक विचार से रहना कठिन है। आप अगर दृढ़तापूर्वक सिद्ध होंगी तो संगठित स्वरूप खड़ा किया जा सकता है"

"मैं प्रयत्न करूंगी-आपका मार्गदर्शन और ईश्वर का आशीर्वाद मुझे बल देगा। अगर यश नहीं मिला तो मेरी कमिओं के कारण नहीं मिला, ऐसा मैं समझूंगी—लक्ष्मीबाई ने दृढ़ता से कहा।

कार्य प्रारम्भ करने का निश्चय हुआ। उसकी गतिविधियां, पद्धति आदि की दृष्टि से विचार विमर्श होने लगा। अपने विचारों को दिशा मिली इसका आनन्द लक्ष्मीबाई को हुआ। माताएँ समाज, देश का विचार करने के लिये सिद्ध हो रही हैं इसका समाधान डॉक्टरजी को हुआ।

एक भेंट में डॉक्टरजी ने कहा 'लक्ष्मीबाई, अपना कार्य देशव्यापी है। यह हिंदुओं का कार्य हिंदुओं के, हिंदुस्थान के गौरव के लिये है। इसलिये एकमन से कार्य करना आवश्यक है।'

कुछ दिनों के पश्चात् जो बातचीत हुई उसमें महिला संगठन का नाम क्या होना चाहिये इस पर विचार हुआ। कुछ नाम सुझाये गये। तब डॉक्टरजी ने अपना अभिप्राय दिया—'हिंदू महिलाओं का संगठन स्वतंत्र रूप से अस्तित्व में आयेगा। नाम भी अलग रहेगा। परन्तु अद्याक्षर संघ की तरह एकही हो ऐसा मुझे लगता है।"

विचार करने के पश्चात् 'राष्ट्र सेविका समिति' यह नाम निश्चित हुआ। हिंदू और राष्ट्र एकरूप होने के कारण तथा राष्ट्र शब्द की व्यापकता ध्यान में रखते हुए यह नाम सर्वमान्य हुआ।

हिन्दू समाज जीवन में यह एक आलौकिक घटना थी जो इतिहास में स्वर्णिम अक्षरों में अंकित की जायेगी।

उमाबाई, वेणुताई, कालिंदीताई, वत्सला आदि को उत्साह भरे शब्दों में, लक्ष्मीबाई डॉक्टरजी से हुई बातचीत का विवरण दे रही थीं। उनका मन अभिमान से, आनंद से, सफलता की भावनाओं से परिपूर्ण था। जैसे किसी तेजस्वी बालक का जन्म परिवार में हुआ हो।

डॉक्टरजी के साथ मिलना, कार्य की रूप-रेखा बनाना जारी रहा। लक्ष्मीबाई को अपने जीवित कार्य की दिशा मिली थी। वे प्रसन्न थीं। चिंतन तो अहर्निश चल रहा था।

अपना शरीर कार्य का साधन है, वह दृश्य है। कार्य की प्रेरणा देने वाला मन तो अदृश्य है। क्या उचित है, क्या अनुचित है यह बताने वाली विवेकबुद्धि है। प्रत्यक्ष व्यवहार

करवाता है, वह तो चैतन्य है। राष्ट्र का भी वैसा ही है। अपना देश इसका शरीर है। देशवासियों की जीवनाकांक्षा उसका मन है, देशप्रीति उसकी बुद्धि है और धर्म-संस्कृति इसका चैतन्य है। इन चारों का समन्वय होगा तो ही राष्ट्र-पुरुष कर्तृत्वसंपन्न होगा—कार्यशील बनेगा इनमें से एक भी अंश दुर्बल रहा, तो राष्ट्र दुर्बल बनेगा।"

लक्ष्मीबाई ! समिति कार्य, संघ की नकल नहीं होगी। स्त्री का भाव विश्व, उसकी प्रकृति, उसके जीवनादर्श सभी का विचार करते हुये तत्त्वों का प्रस्तुतिकरण आवश्यक है। आपको स्त्री जीवन का मूलभूत चिंतन करना होगा। संघ और समिति संगठन स्वतंत्र, समानान्तर परंतु परस्पर सहयोग से चलेगा यह भी दक्षतापूर्वक देखना चाहिये—डॉक्टरजी ने अपने विचार स्पष्ट किये।

उस समय देश पराधीन था। पश्चिमी विचारों के राज्यकर्ताओं का प्रभाव जन-जीवन पर हो रहा था। हीनता, अंधानुकरण का भाव था। राष्ट्र कार्य किसके लिये? 'राष्ट्र' के लिये, उसकी सेवा करने के लिये 'सेविका' बनाना है। सेवा करना स्त्री का धर्म है। आज तक परिवार की सेवा की। अब सेवा का क्षेत्र— विशाल व्यापक बनाना है। राष्ट्र की सेवा करना है। सेवा धर्म कठिन है। सेवा में निष्ठा की त्याग की कसौटी हैं। सेवा निरपेक्ष होती है। राष्ट्र याने अपना देश, वहाँ रहने वाला समाज, उसकी एक परंपरा, संस्कृति। इन सबका संरक्षण संवर्धन सेवा से करना है। वह अकेले से संभव नहीं अतः इस कार्य में अनेकों को जोड़ना है। एक भाव से, एक मन से, एक सूत्र से, एक अनुशासन से। महिलाओं

की संगठित शक्ति का रूप 'समिति' इसलिये संगठन का नाम 'राष्ट्र सेविका समिति' यह नाम सार्थक करने वाली कार्य-पद्धति। स्त्री जीवन की विशेषताएँ मन में रखते हुए कार्य की रचना करनी चाहिये।

पुनश्च विचार, चर्चा, चिंतन।

कार्य का प्रारम्भ कब करना है-यह प्रश्न आया। विचार-विमर्श हुआ। विजयादशमी जैसा और शुभ दिन कौन-सा हो सकता है, विजयादशमी—माँ दुर्गा का विजय दिन, आसुरी शक्ति पर मातृशक्ति की विजय। दुर्गा अर्थात् माँ अर्थात् स्त्री। आसुरी शक्ति के तांडव से राष्ट्र को बचाने के लिये मातृशक्ति ने ही आगे बढ़ाना है यह संदेश देने वाला दिन विजयादशमी। राष्ट्रसेविका समिति के कार्य का प्रारंभ उसी दिन से करने का निर्णय हुआ।

हम करें राष्ट्र अराधन......

लक्ष्मीबाई, वेणूताई, कालिंदीताई अपने परिचित घरों में जा-जाकर माताओं, बहिनों से मिलने लगीं।'समिति' प्रारंभ करने का उद्देश्य, आवश्यकता संकल्पित तिथि, आदि बताने लगीं। कल्पना अनोखी थी। तीनों का उत्साह देख कर अन्य बहिनें प्रभावित होती थीं। समिति में आने का आश्वासन देने वालों की संख्या बढ़ने लगी। शाखा प्रारंभ करने का स्थान निश्चित हुआ। श्री पाठक के घर का चारों ओर से घिरा हुआ आंगन।

विजयदशमी का दिन आया। (२५ अक्टूबर, १६३६) उत्साह भरा वातावरण था। सुशोभित स्थान पर, निर्धारित समय से पूर्व ही बालिकाएँ, महिलाएँ एकत्रित होने लगीं। ठीक समय पर समारोह के अध्यक्ष, श्री. यादव माधव काले पधारे। उनकी अध्यक्षता में समिति का शुभारंभ हुआ। हिंदूप्राण भगवा-ध्वज आकाश में शान से फहराया गया भारत-माता का मन अपनी कन्याओं को इस तरह कार्य प्रवृत्त हुई देख कर, आनंद से भर गया होगा।

बालिकाओं का मैदान पर आना, खेलना आज हमें अटपटा-सा नहीं लगता है, परन्तु उन दिनों में तो यह एक क्रांति ही थी। लक्ष्मीबाई को समिति की सेविकाएँ प्यार से 'मौसीजी' कहने लगी थी। सचमुच सबके लिये वे माँ-सी ही थीं। स्नेह की वर्षा करने वाली मौसीजी। अपने कर्तृत्व व्यवहार के कारण वंदनीया मौसीजी बनीं।

वंदनीया मौसीजी की मृत्यु के पश्चात् श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए एक समाचार-पत्र ने लिखा था—

'महिलाओं का घर की चार दीवारों से बाहर आना, किसी को भी साथ न लेते हुए बाहर जाना, उस समय समाजमान्य नहीं था। ऐसे कालखंड में मौसीजी ने, महिलाओं को संगठन के आधार पर, खुले मैदान में लाया। उनको शारीरिक व्यायाम सिखाया और समाज को दिखा दिया कि स्त्री अब अबला नहीं रही। वह स्वामिनी, तेजस्वी राष्ट्र-सेविका बनी है।

[तरुण भारत नागपुर दि. २८-११-७८]

समिति का मैदान अब दण्ड की क्रमिका, संचलन के एक-दो, एक-दो के स्वर, खेल, गीत आदि से गूंजने लगा देश भक्ति से व्याप्त इस स्थान का, बड़ा आकर्षण युवतियों में निर्माण हुआ। रामकृष्ण के भजन के साथ भारत-भक्ति के गीत गाये जाने लगे। 'अखिल हिंदु विजयध्वज हा उभवू या पुन्हा' यह प्रेरणादायी गीत और 'हे मातृभूमि प्रिय पावन जन्मभूमि। हे आर्यभूमि तुम वंदन धर्म-भूमि।' ये प्रार्थना के स्वर मन की गहराई तक जाने लगे।

समय- समय पर डॉक्टरजी मार्गदर्शन करते रहे। शारीरिक शिक्षण देने के लिये दो बाल स्वयंसेवक उन्होंने भेजे। दो माह की अवधि में पाठ्यक्रम पूरा करना था। बालिकाओं के साथ मौसीजी भी उत्साह से शारीरिक शिक्षण लेने लगी।

संघ और समिति—एकही ध्येय से काम करने वाले दो संगठन, बाह्यत:एक ढांचे के लगते थे परंतु अन्दर से भिन्न थे।

डॉक्टरजी ने कहा ही था कि रेल की पटरियों के समान समानान्तर कार्य सदैव चलेगा। गन्तव्य स्थान एक परन्तु दोनों में निर्धारित अन्तर निश्चित होगा।

अल्पकाल में ही कार्य का प्रसार, विदर्भ और महाराष्ट्र में हुआ। पुणे, सतारा, भंडारा अकोला आदि स्थानों पर श्री. ताई आपटे, ताई दिवेकर, नानी कोलते, कमलाबाई सोहोनी आदि बहिनों ने कार्य प्रारम्भ किया था। पू. डॉक्टरजी इन स्थानों पर संघ कार्य के निमित्त जाते थे तब इन बहिनों को 'राष्ट्र सेविका समिति' का कार्य प्रारम्भ हुआ है, ऐसा बताकर वंदनीया मौसीजी का पता देते थे। संगठन का दायित्व उन्होंने सम्हाला है ऐसा भी वे सूचित करते थे। शीघ्र ही ये छोटे- छोटे प्रवाह समिति की मूलधारा में मिल गये। जैसे दो बहिनों का प्रेमपूर्ण स्वाभाविक मिलन।

पू. डॉक्टरजी की सूचना के अनुसार वं. मौसीजी ने पुणे में जाना निश्चित किया। वहाँ ताईआपटे को मिलना था। डॉक्टरजी ने मौसीजी को पत्र दिया था। अपने सबसे छोटे पुत्र, आनंद को साथ लेकर मौसीजी पुणे आयीं। ताई आपटे बाहर जाने के लिये दरवाजा बंद कर रही थीं। मौसीजी जीने के नीचे, प्रथम सीढ़ी पर खड़ी होकर पूछ रही थीं 'आपटेजी यहीं रहते हैं?' ताईजी ने कहा 'हाँ'। दोनों का दृष्टि मिलन हुआ दोनों भी प्रथम बार मिल रही थीं। परन्तु दृष्टि में भाव था जन्मजन्मांतर के स्नेह के साक्षात्कार का। समानध्येयी दो महान् हृदयों का वह मिलन था—जो शब्दों में अंकित करना असंभव है।

मौसीजी सीढियाँ चढ़कर ऊपर आयीं। उन्होंने कहा, "मैं लक्ष्मी केलकर वर्धा से आई हूँ" और डॉक्टरजी का पत्र उन्होंने सामने बढ़ाया।

मैं जानती हूँ। आपके बारे में डॉक्टरजी ने सब कुछ बताया है। आपको देखते ही मैंने पहचान लिया, ताईजी ने कहा। मौसीजी को अपने घर देख कर उनकी आँखों में आनंदाश्रु आ गये। लक्ष्मी-सरस्वती का मंगलमय मिलन भावनामय था। हिंदू महिलाओं के लिये एक हृदय से काम करने का संकल्प अपने आप हो गया।

उस प्रथम भेंट में ही कार्य की दृष्टि से विचार प्रकट किए गए। दोनों के विचार एवं योजना में आश्चर्यकारक समानता थी। संतुष्ट मन से मौसीजी वर्धा वापस आ गयीं।

समिति का कार्य स्थान-स्थान पर प्रारम्भ करना है, शाखा प्रारम्भ करनी है तो अन्य लोगों को अपने विचार समझाने की क्षमता प्राप्त करना आवश्यक था। मौसीजी को बोलने का अभ्यास नहीं था, बोलने के लिए खड़े होते ही पैर थरथराने लगते थे। जीभ सूख जाती थी, पसीना छूटता था। वे कभी वेणुताई को बोलने को कहतीं तो कभी कालिंदीताई को अपने विचार बताती थीं, जो महिलाओं को बताना उन्हें आवश्यक लगता था। कुछ दिनों के पश्चात् ध्यान में आया कि अपने मन के विचार प्रभावी रीति से रखने हैं तो स्वयं को ही बोलना आना चाहिये। मौसीजी ने निश्चय किया, बोलने की क्षमता प्राप्त करने का। क्या-क्या बताना हैं वे लिखती थीं। मनन करती थीं। कहीं भी सुविचार पढ़ा कि

अपनी डायरी में लिख लेतीं। उसका उपयोग कैसा करना है, कब करना है इसका वे विचार करती थीं। धीरे-धीरे साहस बढ़ा, आत्मविश्वास आया और उत्कृष्ट वक्तृत्व की कला उन्होंने आत्मसात् की। मधुर आवाज, स्पष्ट उच्चारण, भावस्पर्शी शब्दशैली इनका मनोहारी संगम मौसीजी के वक्तृत्व में होता था। महाराष्ट्र के सुप्रसिद्ध कवि 'अनिल' ने अभिप्राय दिया है कि मौसीजी 'वक्ता दशसहस्त्रेषु' की श्रेणी में हैं इसलिए उनके भाषणों की कॅसेटस् तैयार करनी चाहिये। जिससे श्रेष्ठ मराठी वक्तृत्व का उदाहरण भविष्य में मिलता रहेगा, यह तो उनकी तपस्या और ईश्वर की कृपा का फल था।

'एक नैसर्गिक जन्म सर्वमान्य
अन्य होता संस्कार कर्मजन्य'

वं० मौसीजी में नि:सर्गदत्त मधुर आवाज और प्रयत्न-साध्य वक्तृत्व-कला का एक अलौकिक संयोग था।

निष्क्रियता, आलस ये शब्द मौसीजी के शब्दकोश में ही नहीं थे ध्येय का ध्रुवतारा सदैव उनको भासमान होता रहता। अंगीकृत कार्य के लिये सभी प्रकार के परिश्रम करने की उनकी तैयारी रहती थी।

वर्धा नगर का विस्तार हो रहा था। सम्पर्क, सूचना के लिए पैदल जाना अर्थात् श्रम और समय का अधिक व्यय। एक दिन मौसीजी ने पद्माकर से पूछा पद्माकर ! साईकिल सीखने को कितने दिन लगेंगे ?" पद्माकर समझ गया कि वहिनी को अब साईकिल सीखनी है। अब कोई पर्याय नहीं है।

साइकिल चलाना सीख लिया। मौसीजी ने भी अल्पकाल में ही अब कार्य के लिये सम्पर्क करना सुलभ हुआ। समिति कार्य के लिये जो-जो सीखना आवश्यक है वह सब मौसीजी ने कुशलतापूर्वक बिना संकोच के आत्मसात् किया था। अंग्रेजी का अभ्यास भी उन्होंने ऐसा ही किया, पैंतीस साल की आयु में।

समिति कार्य का विस्तार तेजी से होने लगा। वैसा वर्धा के बाहर जाना भी अपरिहार्य हो गया। उमाबाई को चिन्ता होती थी कि अकेली लक्ष्मी बाहर कैसे जायेगी। परन्तु माई नागले जैसी सहकारी बहन उमाबाई को आश्वस्त करती थी। अंगीकृत कार्य का महत्त्व, मौसीजी की दृढ़ता, कर्तृत्व, आत्मविश्वास उमाबाई समझती थीं। लेकिन चिन्ताव्याकुल मन से वे लक्ष्मीबाई को अनुमति देती थीं। लक्ष्मीबाई भी प्रवास से लौटकर आने के पश्चात् अपनी दीदी जैसी स्नेहमयी जेठानी को, वे कहाँ-कहाँ गयी थीं, क्या-क्या किया, क्या हुआ, सब विस्तारपूर्वक बताती थीं। उमाबाई भी धीरे-धीरे निश्चिन्त होने लगीं। अपने परिवार में अपने बारे में कैसा विश्वास निर्माण करना चाहिए इसका यह साक्षात् उदाहरण है। कार्यनिष्ठा, दृढ़निश्चय का यह परिचायक है।

समिति के प्रारम्भ के एक वर्ष पश्चात् सेविकाओं का शिविर लेने का निर्णय हुआ। इसके पूर्व मौसीजी की इच्छा थी संघ का शिविर देखने की। डॉक्टरजी ने उनको वह अवसर दिया। शिविर कैसे सफल बनना है इसका प्रत्यक्ष पाठ ही मिला मौसीजी को।

शिविर की तैयारी प्रारम्भ हुई। बालिकाओं को शिविर में भेजने के लिए घरों में सम्पर्क आवश्यक था। शिविर का महत्त्व माताओं के ध्यान में आयेगा तो ही वे अपनी बालिकाओं को शिविर में भेजेंगी। शिविरार्थी बालिकाओं के निवास, भोजन की व्यवस्था घर-घर से करनी थी। उसके लिये भी मिलना जुलना आवश्यक था। सारी व्यवस्था हो गयी। शिविर अच्छे प्रकार से सम्पन्न हुआ।

शिविर के काल में प्रभात शाखा के समय मौसीजी स्वयं उपस्थित हो जाती थीं। शिविरार्थी बालिकाओं के बारे में एक शिकायत मौसीजी के पास आयी। ये बालिकाएँ रास्ते से आते समय दण्ड पटक-पटक कर आती थीं। प्रातःकाल के शांत समय में इस आवाज से लोगों की नींद टूटती थी। जब मौसीजी को इसका पता चला तो उन्होंने सेविकाओं को दण्ड कंधे पर रखकर आने के लिए कहा। अपने कारण किसी को असुविधा हो और समिति के बारे में उद्वेग निर्माण हो ऐसी कोई भी कृति न करने के लिए सावधानी लेने की सूचना मिली, उसका पालन हुआ।

उन दिनों अपनी बालिकाओं को इस प्रकार अपरिचित घरों में रखने की पद्धति रूढ़ करना, यह एक अनोखा विचार था। इसे मौसीजी ने दृढ़तापूर्वक अपनाया। उसको समाज में मान्यता भी प्राप्त हुयी।

*

कार्य विस्तार के चरण

१९४० का प्रारम्भ हुआ। ग्रीष्मकालीन प्रशिक्षण वर्ग की तैयारी चल रहीं थीं। नागपुर से वार्ता आयी—डॉक्टरजी का स्वास्थ्य ठीक नहीं है। सम्पूर्ण भारत के हिन्दुओं का आशास्थान, प्रेरणास्थान—डॉक्टरजी को भगवान् दीर्घायु दे ऐसा मौसीजी के मन में आता था। हिन्दुत्व का संजीवन देने वाले इस महामानव को संजीवन कैसे मिलेगा? हिन्दू संगठन के लिए अपने जीवन का क्षण-क्षण व्यतीत करने वाले दिव्य, तेजस्वी व्यक्तित्व का मार्गदर्शन इस समय अति आवश्यक है। 'संगच्छध्वं, संवदध्वं' की ध्वनि जिसके श्वास-प्रश्वास से गूंजती है, वह नरशार्दूल विकल अवस्था में है, यह देखना क्या, सोचना भी पीड़ादायक है। वंदनीया मौसीजी बड़े व्याकुल मन से पू० डॉक्टरजी को मिलने नागपुर आयीं। मिलने के पश्चात् वर्धा वापस जाते समय मन में आक्रोश था, पीड़ा थी।

उन्हीं दिनों में वर्धा में एक अलौकिक उत्साह का वातावरण था। स्वाधीनता के लिए सिंहगर्जना करने वाले तेजस्वी देशभक्त नेताजी सुभाषचन्द्र बोस वर्धा पधारने वाले थे। उनके स्वागत के लिए वर्धा नगरी सिद्ध हुई। देशभक्ति का साकार रूप याने सुभाषचन्द्र। उनकी ओजस्वी वाणी सुनने के लिए वर्धा वासी आतुर थे। २१ जून का दिन आया वही उमंग लेकर—एकही ध्यान मन में था। कार्यक्रम के पहले ही सभा स्थान पर अपार जनसमुदाय एकत्रित हुआ। नेताजी आये।

सहस्रों लोगों की दृष्टि धन्य हो गयी। कान तृप्त हो रहे थे उनकी वाणी सुनकर। अचानक एक व्यक्ति ने नेताजी के हाथ में एक कागज दिया। उन्होंने वह पढ़ा। आँखों से आँसू झरने लगे। गद्‌गद् स्वर में उन्होंने कहा भारत माता के मुकुट का एक तेजस्वी हीरा – डॉक्टर हेडगेवार—हमने खो दिया है।

सभा का उल्लास, जोश अब शोक में बदल गया। पू० डॉक्टरजी को आदराञ्जलि देने के पश्चात् सभा विसर्जित की गयी। डॉक्टरजी के हितैषी, स्वयं सेवक बन्धु जो वाहन उपलब्ध हुआ, उसीसे नागपुर की ओर चल पड़े। डॉक्टरजी का अन्तिम दर्शन करने के लिए, अपनी मूक श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए। उनका आशीर्वाद मांगने के लिए।

वं० मौसीजी का मार्गदर्शक बन्धु नहीं रहा। कार्य का बीजारोपण हुआ था। वह पूर्ण विकसित होने के पूर्व ही उनका आधार टूट गया।

कार्य का विस्तार हो रहा था। महाराष्ट्र के बाहर सिन्धु, गुजरात, मध्य प्रदेश पंजाब आदि प्रान्तों में कार्य बढ़ रहा था। वर्धा के अतिरिक्त नागपुर, पुणे, में भी समिति के प्रशिक्षण वर्ग होने लगे। सिंधु, गुजरात की सेविकाओं के सामने भाषा की समस्या थी। परन्तु मनका भाव, कार्य की लगन तथा महत्व के कारण वे भाषा समझने का प्रयत्न करती थीं। अनुशासन का पालन करने के लिए बौद्धिक कक्ष में भी वे उपस्थित रहती थीं। १९४३-४४ में करांची में वर्ग हुआ। उसके प्रभाव के कारण समिति कार्य दृढ़ हुआ।

उन्हीं दिनों में अमरावती की एक बालिका वर्धा आयी। उसने समिति शाखा का रूप देखा। सभी बालिकाएँ ध्वज के

सामने खड़ी होकर प्रार्थना कर रही थीं। उसने आश्चर्य से पूछा ये सब क्यों करती हैं ? यह क्या है ? उसको बताया गया कि यह भगवा ध्वज अपनी संस्कृति का प्रतीक है। उसको हम वंदन करती हैं। लीला को सब अच्छा लगा। वं० मौसीजी को अमरावती आने का उसने निमन्त्रण दिया। समिति कार्य वहाँ प्रारम्भ होने के पश्चात एक उत्सव के लिए वं० मौसीजी अमरावती गयीं। उस दिन गाड़ी विलम्ब से पहुँची। स्टेशन पर कोई नहीं था। स्थान खोजते-खोजते वंदनीया मौसीजी को स्थान पहुँचने में और विलम्ब हो गया। कार्यक्रम प्रारम्भ हो चुका था। क्योंकि समयपालन का महत्व मौसीजी से ही उन्होंने बार-बार सुना था। वं० मौसीजी ने भी समय पालन के लिए उनका अभिनन्दन किया। कार्यक्रम समाप्ति के पश्चात् सब सेविकाएँ वंदन करने हेतु उनके निकट आयीं एक सेविका झुकी चरणस्पर्श के लिए, तो उसने देखा मौसीजी के पैर का अंगूठा लहुलुहान हुआ है।

'मौसीजी ! यह क्या हो गया आपके अंगूठे को ? उसने पूछा। जमीन पर खून जमा हुआ था।

अरी कुछ नहीं। जरा जल्दी-जल्दी में आ रही थी, तो चोट लग गयी।

सेविकाओं ने देखा कि उत्सव समाप्त होने तक वं० मौसीजी अपनी वेदना छुपा कर बोल रहीं थीं। विलम्ब से पहुचने के कारण उन्होंने क्षमा भी माँगी। शारीरिक, मानसिक आघात झेलते हुए कार्यप्रवण रहने का संस्कार अनायास हो रहा था। भाषणों से अधिक प्रभावी होता है व्यवहार।

कभी-कभी वं० मौसीजी के जीवन में माता और संगठन की प्रमुख इन दो भूमिकाओं में संघर्ष सा निर्माण होता था। कसौटी के क्षण आते थे। उनका सामना करना पड़ता था। एक समय ऐसा ही हुआ। समितिकी एक बैठक अकोला में थी, सायंकाल तक वहाँ पहुँचना था। उसी से एक दिन पूर्व वत्सला को तेज बुखार हुआ। औषधि देने से भी कम नहीं हो रहा था, जाना तो आवश्यक था। बैठक तो उन्होंने ही बुलायी थी। सब बहिनें उत्साह से एकत्रित हो जायेंगी। उनका उत्साह भंग नहीं होना चाहिए। अगर बैठक में जाऊँ तो वत्सला को तेज बुखार है, लोग कहेंगे कैसी है लापरवाह माता!

लक्ष्मी के मन के आन्दोलन उमाबाई देख रही थी। उन्होंने कहा, 'लक्ष्मी, तुम जाओ निश्चिन्त मन से। मैं वत्सला को देखूंगी, औषधी दूंगी। कुछ ना सोचो, तुम्हारा वहाँ जाना कितना आवश्यक है यह मैं समझती हूँ। आखिर हम दोनों बहिनें ही हैं? तुम जाओ।

मौसीजी आश्वस्त होकर अकोला बैठक में गयी। बैठक अच्छी प्रकार से समाप्त होते ही रात को वहाँ भोजन आदि के लिए न ठहरती हुई वर्धा वापस आयीं। बैठक की कार्यवाही पूरी करना संगठन प्रमुख का दायित्व था। उसके पश्चात् पुत्री का विचार करना माँ का दायित्व था।

वर्ष १९४५ अपने कार्य का, सेविकाओं के अनुशासन का नियोजन शक्ति का मूल्यांकन करने की दृष्टि से मीरज में एकत्रीकरण करने का इसी वर्ष विचार हुआ। द्वितीय महायुद्ध

का वह समय था । चावल, चीनी पर नियंत्रण था । प्रति घर से आधी कटोरी चीनी, चावल लाने का आवाहन किया तो चीनी का पहाड़ खड़ा हो गया । उन दिनों में पानी की भी कमी थी, पानी दूर से लाना था । स्वयं प्रेरणा से सेविकाओं ने एक श्रृङ्खला बनाकर पूरा पानी भर लिया । कम से कम श्रम में काम हो गया । अनुशासन का एक अनोखा आविष्कार मीरज वासिओं ने देखा ।

समिति कार्य ने प्रारम्भिक स्थिति पार की थी । निश्चित योजना से नियमित बैठकें, वर्ग, सम्पर्क बनाने का निर्णय हुआ । समिति-सेविकाओं को शिशु मन्दिर और उद्योग मन्दिर की योजना बनानी चाहिए, ऐसा महत्त्वपूर्ण विचार वं०मौसीजी ने इस बैठक में रखा ।

अब ताई दिवेकर, काकू रानाडे, काकू परांजपे, ताई अम्बर्डेकर, जीजी काणे प्रवास करने लगीं । कार्य का विस्तार तथा स्थिरता दोनों का विचार होने लगा ।

अगस्त १९४७ का वर्ष भारत के इतिहास का महत्वपूर्ण कालखण्ड, स्वाधीनता का स्वर्णिम पृष्ठ और स्वजनों की हत्या का रक्तरंजित चित्र, स्वाधीनता प्राप्ति का आनन्द मनायें या अपने हिन्दू बांधवों की क्रूर हत्या व प्रियतम मातृभूमि के विभाजन का दुःख करें ? शुभ्र हिमालय की गोद से निकली हुई पवित्र जलधाराओं का रंग ही बदल गया। जिसके किनारे दैवी वैदिक संस्कृति का विकास हुआ, वह सिन्धु हम से बिछुड़ गयी । बंग को सोने का टुकड़ा बनाने वाली पद्मा, मेघना परायी हो गयीं । हिमवान की एक कन्या भागीरथी अपने

पिता से पूछने लगी इस आनन्दोत्सव में आपने दीदी सिन्धु को क्यों नहीं सम्मिलित कर लिया ? स्थिर प्रकृति का हिमालय भी इस प्रश्न से व्याकुल हुआ, आँख सजल हुई, क्या उत्तर दे, इस प्रश्न का ? सिन्धु के वियोग से हिमालय भी द्रवित हुआ। भारत का प्रहरी देख रहा था भारत का विभाजन। अपनी माता-बहिनों, कन्याओं के मांग के सिन्दूर से लाल ही लाल जलप्रवाह, डूबता हुआ विश्वास,क्रूरता का तांडव और मौसीजी ? वे कहाँ थीं ? क्या कर रही थीं ? वे गयीं थीं अपनी प्रिय सेविकाओं को मिलने के लिए सिन्ध में। वहाँ की समिति की सेविकाओं का पत्र आया था। अपनी मनोवेदना प्रकट करने वाला वह पत्र, उसमें लिखा था—

'मौसीजी !अब हमें सिन्ध छोड़ना ही पड़ेगा,यह बात स्पष्ट होती जा रही है। हमारी मातृभूमि को मुसलमान भोग-भूमि बना रहे हैं। निरन्तर यहीं निवास करने की हमारी इच्छा अब अधूरी ही रहेगी। मौसीजी ! हम सिन्ध की सब बहनें चाहती हैं कि यहाँ से विदा होने के पूर्व एकवार आप हमारे बीच आयें। इस पावन सिन्धु को साक्षी रखते हुए हम प्रतिज्ञा करने वाली हैं कि हम अपने कर्तव्यों का पालन करने के लिए कटिबद्ध रहें। आपका यहाँ आना इसलिए भी जरूरी है कि आप जैसी प्रेममयी प्रेरणामयी माता की उपस्थिति में दुःख का बोझ थोड़ा हलका होगा और भविष्य में कर्तव्य पालन की प्रेरणा हमें मिलेगी। क्या आप हमारी आरजू पूरी करेंगी ?'

आपकी बेटी
जेठी

जेठी का पत्र मिलते ही मौसीजी ने सिन्ध जाने का निर्णय लिया। वे वेणुताई को साथ लेकर बम्बई आयीं, वह दिन था ४ अगस्त १९४७। बम्बई से करांची जाने के लिए हवाईजहाज से प्रस्थान किया। हवाईजहाज में कोई अन्य महिला नहीं थी। इतने भयावह वातावरण में ये दो महिलाएँ करांची जाने का साहस कर रहीं थीं। आश्चर्यकारक साहस किसलिए? हवाईजहाज में श्री जयप्रकाश नारायण जी थे, वे भी अहमदाबाद उतर गये। करांची अड्डे पर वे उतरीं तब मौसीजी का सतर्क निरीक्षण चल रहा था।

करांची का कायापलट हुआ था। भारत विरोधी घोषणाएँ हो रही थीं। 'लड़ के लिया पाकिस्तान, हँस के लेंगे हिन्दुस्तान।' हिंसा, हत्या की कोई सीमा नहीं थी। सड़कों के नाम तक बदले जा रहे थे, भाषा भी उर्दू। गन्तव्यस्थान पर उनको पहुँचाया गया। मौसीजी बाद में कहती थीं कि हम बड़े सहनशील हैं स्वाधीनता प्राप्त होनेके कई वर्ष पश्चात् भी हमने सड़कों व पुलों के नाम नहीं बदले हैं—अकबर रोड़, औरंगजेब रोड, कॅनॉट प्लेस, एलिस ब्रिज आज भी हैं। मन की गुलामी अभी भी नहीं गयी।

करांची में एक उत्सव सम्पन्न हुआ। लगभग १२०० सेविकाएँ उपस्थित थीं। धीर-गम्भीर वातावरण में प्रतिज्ञा ली गयी। वं० मौसीजी दृढ़-निर्धार प्रतिज्ञा के शब्द बोलती गयीं। सेविकाएँ वे शब्द उतनी ही गम्भीरता से दोहराती रहीं। प्रतिज्ञा के शब्द मनकी संकल्पशक्ति को आह्वान कर रहे थे।

वं० मौसीजी ने अन्तमें कहा, 'धैर्यशाली बनो, अपने शील का रक्षण करो, संगठन पर विश्वास रखो, अपनी मातृभूमि की सेवा करने का व्रत पालन करो। यह अपनी कसौटी का क्षण है।

अनेकों ने प्रश्न पूछा, हमारी इज्जत खतरे में है। हम क्या करेंगे ? कहाँ जायेंगे ? वं० मौसीजी ने उनसे कहा, 'दुर्गा' बनो। इतना ही नहीं तो भारत आने पर उनकी पूरी व्यवस्था करने का भी आश्वासन दिया। उसी के आधार पर अनेक परिवार भारत आये। युवतियाँ, महिलाएँ भी आयीं। जिन का वॉरंट था उनको बम्बई के परिवारों में रखा गया। उनके बारे में पूरी गोपनीयता रखी गयी।

स्वाधीनता प्राप्ति के कुछ ही महीनों के पश्चात् महात्मा गान्धीजी की हत्या हुई। प्रतिशोध की भावना से देश भर में हिंसा का ताण्डव हुआ। हिन्दू विचार रखने वाले रा. स्व. संघ जैसे संगठन पर प्रतिबन्ध लगाया गया। परिस्थिति ने नयी करवट ली। धोखा पहचान कर, वं० मौसीजी ने समिति कार्य कुछ दिनों के लिये स्थगित किया। वैसा केन्द्र शासन को सूचित किया।

दिन प्रतिदिन बढ़ने वाला अपना कार्य स्थगित करना पड़ा इसका वं० मौसीजी को अतीव दुःख था। लेकिन वे निराश नहीं हुई। मैदान में शाखा लगना बन्द हो गया फिर भी अनेक अनेक कारणों से सेविकाएँ एकत्रित आती थीं। अंग्रेज शासन काल से भी अधिक कडे निर्बंध लगे थे। फिर भी संगठन की मन्दाकिनी संकटों के पहाड़, पार कर मार्ग संक्रमण करती चल रही थी।

ऐसी स्थिति में भविष्यकालीन योजना के लिए प्रमुख कार्यकर्ती बहनों को एकत्रित आना बहुत आवश्यक था। यह इन्हीं दिनों वं॰ मौसीजी के द्वितीय पुत्र—पद्माकर का विवाह निश्चित हुआ। एक अच्छा अवसर मिल गया। वं॰ मौसीजी ने बैठक में अपेक्षित सभी बहिनों को विवाह का निमन्त्रण पत्र स्वयं लिखकर दिया। उनका हेतु समझकर सभी बहनें विवाह समारोह में पहुँच गयीं। विवाह समारोह की गहमा-गहमी में महत्वपूर्ण बैठक शांति से हुई।

गांधी हत्या का बहाना बनाकर हिंसा, लूट-पाट करने वाले अनेक महाभाग थे। वं॰ मौसीजी वर्धा में अपनी जेठानी के साथ थीं। केलकर परिवार हिंदुत्वनिष्ठ होने के कारण उनके घर पर मोर्चा आयेगा ऐसा अनुमान था। किसी का घर से बाहर जाना असम्भव था। वं॰ मौसीजी ने पड़ोस की एक छोटी बालिका को अपने घर बुला लिया। पुलिस कमिश्नर को बन्धु नाते एक सहाय्य के लिए चिट्ठी लिखी। वह चिठ्ठी सुधा के फ्रॉक को पिन से लगायी और उसको कहा, सुधा, तेरे फ्रॉक के भीतरी बाजू में लगायी हुई चिठ्ठी देकर आओ, घबराना नहीं। पत्र भीतर और रूमाल बाहर एक ही पिन से फ्रॉक से जुड़े थे। वह किसी के ध्यान में आने की सम्भावना नहीं थी। सुधा ने भी न घबराते हुए सावधानी से चिठ्ठी इष्ट स्थान पर पहुंचायी। खानदान की प्रतिष्ठा थी। इसलिए घर को संरक्षण प्राप्त हुआ। मौसीजी की भी निर्णय क्षमता, प्रसंगावधान इस घटना से प्रकट हुई।

संघ कार्य पर लगाये गये निर्बंध हटाने तथा परिवारों को सहाय्य देने के लिए समिति अपनी शक्ति के अनुसार प्रयत्न

करती रही। विविध स्तर पर किये गये प्रयत्नों के फलस्वरूप १९४९ में रा. स्व. संघ पर लगाये गये सब निर्बंध हट गये। उसके पश्चात् समिति की शाखाएँ विधिवत् प्रारम्भ करने का आदेश वं० मौसीजी ने दिया। शाखाएँ प्रारम्भ तो हुईं परन्तु कार्य में पहले जैसा उत्साह, चैतन्य नहीं दीख रहा था। वह चैतन्य पुनः प्राप्त करने का मार्ग खोजना आवश्यक था इसी दृष्टि से वं० मौसीजी ने अनेक प्रयोग किये। पथ-प्रदर्शक श्रीराम कथा के अध्ययन चिन्तन पर ध्यान केन्द्रित करने से उचित मार्ग मिलेगा इसी विश्वास से वं० मौसीजी का श्रीरामायण अध्ययन, चिन्तन के साथ-साथ प्रवास चल रहा था। रामायण से सम्बन्धित लेख, भाषण, ग्रन्थ स्थान-स्थान से प्राप्त कर वे पढ़ती थीं। एक प्रकार की साधना ही थी यह।

करो तुम रामकथा विस्तार

कभी-कभी मेघाच्छादित आकाश से वातावरण उदास बनता है। उनके कारण शरीर और मन भी उदास हो जाता है। परन्तु कालचक्र घूमता रहता है, स्थिति बदलती रहती है। तत्कालीन कार्य की स्थिति देखकर वं० मौसीजी का मन तड़प रहा था। क्या करें, जिससे कार्य में फिर से उत्साह भरेगा ? वे सोच रहीं थीं कि जब भगवान को भक्त स्वयं सर्वस्व समर्पण करता है तब भगवान को प्रसन्न होना ही पड़ता है। राष्ट्र को देवता मानने वाली वं०मौसीजी के संगठन शरण व्यक्तित्व के कारण विश्वशक्ति ने उनको कृपाशीर्वाद दिया। उनकी सात्विक साधना सफल हुई।

उषाकाल का मंगल समय पक्षीगण मधुर कूजन कर रहे थे। वं० मौसीजी अर्ध-जागृत अवस्था में थी। उनको आभास हुआ कि प्रसन्न नीला रंग कमरे में छा गया है। सामने ही एक गुफा दिखाई दी। 'चलो उस गुफा में डरो मत !' अति मधुर परन्तु आग्रही आवाज दूर से आयी। वं० मौसीजी ने उसी भावावस्था में गुफा में प्रवेश किया। वहाँ भी वही नीला रंग छाया हुआ था। प्रत्येक पग पर एक अनोखे स्पन्दन की अनुभूति हो रही थी। 'श्रीराम जयराम जय जय राम की' मंगल ध्वनि कहीं से निनादित हो रही थी। गुफा में एक तेजस्वी आकृति विराजमान थी। सामने एक ग्रन्थ था। वं० मौसीजी और आगे बढ़ीं। वह शुभ्र जटाधारी आकृति अधिक स्पष्ट हुई। उत्स्फूर्तता से वं० मौसीजी ने उस आकृति

को नम्रता से झुक कर प्रणाम किया और उठकर वे खड़ी हो गयीं। उस तपःव्रत तेजस्वी आकृति ने अपने सामने विराजमान ग्रन्थ उनको हाथों में दिया और कहा—

'होगा कार्य महान्
करो तुम रामकथा विस्तार
करो तुम रामकथा विस्तार।'

देखते-देखते वह आकृति लुप्त हो गयी, वह नील प्रकाश वैसा ही छाया रहा। प्रसन्न मन से वं० मौसीजी की आँखें खुल गयीं। क्या संकेत मिला मुझे, वे सोचने लगीं। प्रभातकाल का प्रसन्न वातावरण उसमें प्रसन्न स्वर से उच्चारित आशीर्वचन पुनः-पुनः वे ही शब्द निनादित हो रहे थे—

"करो तुम रामकथा विस्तार।"

वही आदेश शिरोधार्य मानकर वं० मौसीजी ने रामकथा प्रारम्भ की। अपने आराध्य देवता के चरित्र कथन में वे रम गयीं। प्रारम्भ में उन्हें लग रहा था इतना बड़ा प्रभावी चरित्र बताना, अपना साहस नहीं है। मन में संकोच होता था। लेकिन प्रवचन करने के लिए आसन ग्रहण किया कि उनके मन से अन्य विचार लुप्त हो जाते थे।

वर्धा के महादेव मन्दिर में ही रामायण कथन का प्रारम्भ हुआ। आठ-दस महिलाएँ आतीं थीं। उमाकाकू नियमित उपस्थित रहती थीं। राम-कथा की समाप्ति हुई। उमाकाकू ने अपने गले की सोने की माला उतारी और अपनी देवरानी के गले में पहनायी। प्रेम मुदित मन से उनको गले लगाती हुई वे बोलीं 'लक्ष्मी कहाँ से सीखा यह सब ? कौतुक मिश्रित सजल

आँखों से जेठानी देवरानी एक दूसरे को नहला रहीं थीं। घर आते ही अपनी गुणवती देवरानी की नजर उमाकाकू ने उतारी और अखण्ड यशस्वी होने का आशीर्वाद दिया।

वं० मौसीजी का आत्मविश्वास बढ़ता गया। धीरे-धीरे तीन-तीन से आठ-आठ से तेरह दिन रामायण कथन की कालावधी बढ़ती गयी। महाराष्ट्र के बाहर भी गुजरात, मध्य प्रदेश क्वचित बिहार, बंगाल में भी। इसलिये हिन्दी में प्रवचन करना आवश्यक हुआ। वं० मौसीजी ने हिन्दी पर प्रभुत्व प्राप्त करने हेतु अथक प्रयत्न किये।

प्रत्येक स्थान का अनुभव अलग-अलग रहा। एक स्थान पर श्रोता आये ही नहीं। निमन्त्रण करने वाली महिला को बड़ा दु:ख हुआ। वं० मौसीजी ने उसे कहा 'अरी कोई श्रोता नहीं ऐसा क्यों कहती है? साक्षात् राम हैं, सीतामाई हैं, हनुमानजी हैं और आप हैं। अपना संकल्प है वह हम पूरा करेंगे। प्रवचन प्रारम्भ हुआ और थोड़े ही समय में सभामंडप श्रोताओं से भर गया।

राजमाता विजया राजे सिंधिया ने भी उन्हें प्रवचन सुनने की इच्छा से ग्वालियर में आमन्त्रित किया और अपने निजी मन्दिर में कार्यक्रम रखा। बड़ोदा का भी उदाहरण ऐसा ही मनको लुभाने वाला है। वहाँ से प्राप्त एक समाचार-पत्र में लिखा है—'मेरी स्मृति में माणिकराव व्यायामशाला में इतना बड़ा जन-समूह केवल तीन बार मैंने देखा है। पं० मालवीयजी आये थे तब ८-९ हजार का समूह एकत्रित हुआ था। दूसरी बार राष्ट्रीय कीर्तनकार श्रीआठवले का कीर्तन हुआ तब और

आज। कीर्तन में नाट्य, उद्बोधन, मनोरंजन रहता है। मनोरंजन का किसी भी प्रकार का आकर्षण नहीं रहने पर भी आपकी रामकथा सुनने के लिये इतने लोग आये थे, यह आपके ही पुण्याचरण का प्रभाव है।'

प्रथम संकोच था वाणी में परन्तु बाद में वाणी पर ऐसी धार चढ़ी कि उनके शब्द मानसतल तक अंकित होते थे। पुणे आदि स्थानों पर तो व्यवसायी बन्धुओं की सुविधा के लिये प्रवचन का समय रात को ८ बजे के बाद का रखा गया।

वं० मौसीजी श्रीराम राज्याभिषेक तक का ही कथा भाग बताती थीं। श्रीराम भगवान हैं, इस धारणा से नहीं तो वे मर्यादा पुरुषोत्तम महा-मानव हैं, उत्तम शासक हैं, राष्ट्र पुरुष हैं, हर प्रकार का कर्तव्य पालन करने वाले हैं, यह मौसीजी आग्रह-पूर्वक प्रतिपादन करती थीं। श्रीराम राज्याभिषेक का समारोह बड़ी श्रद्धा से होता था। दरबार सजाया जाता था और नजराना दिया था। मन्त्रघोष से राज्याभिषेक समारोह संपन्न होता था।

बोरीवली की एक घटना, वहाँ की बहिनों को धूम-धाम से राज्याभिषेक समारोह करने की इच्छा थी। उसके लिये चाँदी के उपकरण, बर्तन चाहिए थे। राज्याभिषेक के लिए आने वाली महिलाएँ गहने पहनकर ही आयेंगी। अगर कुछ दुर्घटना हुई तो ? उसके पूर्व, बोरीबली में अनेक स्थानों पर चोरी, लूटपाटों की घटनाएँ हुई थीं। अब क्या करें ? एक ओर वैभव सम्पन्न, नेत्र दीपक राज्याभिषेक करने की चाह तो दूसरी ओर चोरों का भय। एक महिला ने अपने मनकी शंका

वं० मौसीजी के सम्मुख रखी। तब वं० मौसीजी ने कहा कि राष्ट्र को परमवैभव पर पहुँचाने की बात करना और उस वैभव को संभालने के लिए डरना—कैसे चलेगा ? वैभव चाहिए तो उसका सरक्षण करने की सिद्धता भी होनी चाहिए। वं० मौसीजी के प्रेरणादायी शब्दों से महिलाओं में साहस निर्माण हुआ और राज्याभिषेक का कार्यक्रम नेत्र दीपक रीति से सम्पन्न हुआ।

श्रीराम, छत्रपति शिवाजी, देवी अहिल्याबाई जैसे उत्तम श्रेष्ठ प्रशासक अपनी शाखा प्रक्रिया से निर्माण होने चाहिये ऐसा उनका कहना था। सत्ता के पीछे हम नहीं दौड़ेंगे, ना वह हमारा जीवन ध्येय है, परन्तु सत्ता प्राप्त होने पर वह सफलता से, कुशलता से निभाने की हमारी सिद्धता होनी चाहिए। किसी भी दायित्व को निभाने की क्षमता माँ को ही निर्माण करनी है। उसे स्वयं उत्तम प्रशासक बनना होगा। आवश्यक यह कारण है कि गृह राज्य की प्रशासक तो वही है। इसी भावना से वं० मौसीजी ने सेविकाओं को तीन आदर्श बताये। मातृत्व, कर्तृत्व, नेतृत्व तीनों गुण माता में विकसित होने चाहिए। नेता अर्थात् आगे ले जाने वाला। कुटुम्ब को आगे ले जाने की क्षमता उसमें आनी चाहिए। कौन से आधार पर वह आगे ले जा सकेगी ? तो कर्तृत्व के आधार पर उसे साथ चाहिए मातृत्व का। मातृत्व तो स्त्री का स्थायीभाव है। उसके प्रेम, वत्सलता की सीमा विशाल होनी चाहिए जैसे पानी या ध्वनि तरंग की परिधि विशाल होते-होते अनन्त में विलीन हो जाती है। तद्वत् स्त्री का स्व-कुटुम्ब, ग्राम, समाज, देश, राष्ट्र और विश्व को स्पर्श कर सके इतना

विस्तारित होना चाहिए। यही तो समिति की धारणा है। रानी लक्ष्मीबाई का नेतृत्व, देवी अहिल्याबाई का कर्तृत्व तथा जीजाबाई के मातृत्व का आदर्श समिति को अनुकरणीय है।

वं० मौसीजी की रामकथा से अनेकों को नयी दिशा मिली, प्रेरणा मिली है। रामायण प्रवचनों का उनका ग्रन्थ किसी के लिये सन्दर्भ ग्रन्थ, किसी के लिए पाठ्यपुस्तक तो किसी के लिए परमश्रद्धा स्थान बना है।

सीताजी के जीवन से श्रीराम का निर्माण होता है यह अनुभव सिद्ध सिद्धान्त, उनकी पवित्रता, निर्भयता प्रेरक शक्ति आदि गुणों का महत्त्व समझने के लिए श्रीराम कथा मूल में श्रद्धायुक्त मन से पढ़नी चाहिए। श्रीराम हमारे राष्ट्र पुरुष हैं यह धारणा दृढ़ बनाने की दृष्टि से वं० मौसीजी श्रीरामचरित्र प्रस्तुत करती थीं। उनकी मधुर भक्ति-रस परिपूर्ण वाणी सुनने का अवसर जिनको मिला वे भाग्यवान हैं।

मीताजी ने अपना 'स्व' कैसे विकसित किया यह हमें समझ लेना है। स्वधर्म अर्थात् स्वकर्तव्य। पत्नी अभिषिक्त साम्राज्ञी, लवकुश का संगोपन करने वाली माँ आदि विविध भूमिका के अनुसार अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थिति में अपने कर्तव्य का पालन उसने कैसा किया यह चिंतनीय है। अपना देश, धर्म-संस्कृति, परिवार आदि के सन्दर्भ में अपना कर्तव्य जानकर उसका दक्षता से पालन करना प्रत्येक स्त्री के लिए आवश्यक है। कर्तव्यपालन करते समय संयम, दृढ़-निश्चय, एवं मोह का त्याग करना पड़ता है।

इसी दृष्टि से वं० मौसीजी ने भगवान श्रीराम का चरित्र सभी के सम्मुख बड़ी कुशलता से रखा और कइयों को राम कथा बताने के लिये प्रेरित किया। केवल समिति की शाखा-शाखा में नहीं तो मोहल्ले-मोहल्ले में श्रीराम जन्मोत्सव के समय रामायण प्रवचन आज भी आयोजित किये जाते हैं। जहाँ बहिनें भाषण नहीं कर सकती हैं ऐसे कुछ क्षेत्रों में वं० मौसीजी की श्रीरामायण की पुस्तक पढ़ी जाती है, वायुमण्डल राममय हो जाता है।

वं० मौसीजी रामायण प्रवचन करती थीं। वहाँ स्वयं स्फूर्ति से धन एकत्रित होता था। वं० मौसीजी को वह समर्पित किया जाता था। परन्तु उन्होंने उसमें से एक पैसा भी निजी उपयोग के लिए रखा नहीं। देवी अहिल्या मन्दिर नागपुर, अष्टभुजा मन्दिर वर्धा तथा अन्य प्रतिष्ठानों के निर्माण में वं० मौसीजी का बड़ा आर्थिक सहभाग है।

वं० मौसीजी की तपस्या तथा महर्षि के आशीर्वाद के कारण श्रीरामायण प्रवचन का प्रयोग सफल हुआ। जन-संपर्क, भक्ति के साथ-साथ प्रबोधन भी करने का अवसर मिला सोने में सुहागा निर्माण हुआ।

वं० मौसीजी के घुटनों में बड़ा दर्द था। परन्तु प्रवचन के लिए एकबार आसनस्थ होने के पश्चात् कभी भी वे अपनी स्थिति बदलती नहीं थी। संगीत शास्त्र के स्वरों मंद, मध्य तार सप्तक होते हैं। वैसे ही उनके भाषणों में होते थे। भक्ति की सात्विकता तेजस्विता उनके चेहरे पर, उनके शब्दों में झलकती थी। श्रोतागण कथा से एकरूप हो जाते थे।

आज वह रस मधुर वाणी लुप्त हुई है। हम वह वाणी सुन नहीं सकते हैं परन्तु 'पथदर्शिनी श्रीरामकथा' के रूप में आज हमारे मध्य में उसका अस्तित्व है। अपनी जीवन रचना में रामकथा का महत्त्व असीम है। अतः हमने उसका अध्ययन करना चाहिये।

१९७२ में रामायण प्रवचनों की संख्या ५१ होने के कारण एक विशाल कार्यक्रम का आयोजन किया गया। उन दिनों पू० गुरुजी का स्वास्थ्य ठीक नहीं था। उनकी श्रीराम भक्ति ध्यान में लेकर रोज श्रीराम का प्रसाद तीर्थ नियमित भेजा जाता था। १९७७ में १०८ प्रवचन करने का उनका संकल्प पूरा हुआ तब देवी अहिल्या मन्दिर में (नागपुर) एक भव्य कार्यक्रम सम्पन्न हुआ और संयोग, सौभाग्य या रामकृपा के कारण उसके समापन के दिन ही हमारे सभी बन्धु जो द्वितीय आपातकाल में कारावास में बन्द थे उनकी मुक्ति हुई। श्रीराम का प्रसाद ग्रहण करने के लिए वे सब अहिल्या मन्दिर में पहुँचे।

★

राष्ट्रभक्ति के जीवन-रस से

समिति कार्य का ढांचा बाह्यतः संघ जैसा दिखाई देता है, लेकिन ध्येयनीति के प्रस्तुतीकरण का विवरण अलग है। हिन्दू स्त्री की मानसिकता का, उसकी प्रकृति का, स्थायी वृत्ति का चिन्तन करते हुए वं० मौसीजी ने अपनी स्वयं प्रज्ञा से, प्रतिभा से आवश्यक परिवर्तन किया है।

कार्य का विस्तार जब महाराष्ट्र के बाहर होने लगा तब प्रारम्भकाल की मराठी प्रार्थना के स्थान पर संस्कृत भाषा में, जो सभी भारतीय भाषाओं की जननी है—प्रार्थना की रचना करना आवश्यक लगा। किस प्रकार हिन्दू स्त्री का निर्माण करना है. कौन से गुण उसमें विकसित होने चाहिये इस पर चिन्तन हुआ। स्त्री के निसर्गदत्त गुणों का विकास होने से काम नहीं चलेगा। स्वयं हिन्दुभाव के अभिमानी, सदाचरणी, स्वधर्मश्रद्धा, राष्ट्रभक्त बनना जितना आवश्यक है उतना ही दूसरों को इन गुणों की प्रेरणा देने की शक्ति स्वयं प्राप्त करना भी आवश्यक है, इसका विचार हुआ। प्रान्त-प्रान्त की तेजस्वी, कर्तृत्ववान, समाजसेवी महिलाओं के चरित्रों के माध्यम से राष्ट्रीय एकता का भाव निर्माण करने के हेतु से प्रातः स्मरण की रचना करने का निर्णय लिया गया। अपना जीवन समृद्ध बनाने वाले पंचमहातत्त्व और श्रद्धा स्थानों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने की दृष्टि से दस नमस्कार छन्दोबद्ध किये गये। इन सबका नित्य-पठन शाखाओं में होता है।

संगठन की सर्वांगीण प्रगति करने की दृष्टि से वं० मौसीजी का चिन्तन चल रहा था। शारीरिक स्वास्थ्य, संरक्षण क्षमता लचीलापन, प्रतिकार शक्ति आदि की दृष्टि से शिक्षा पाठ्यक्रम की रचना आवश्यक थी। साथ-साथ स्त्री की शरीर रचना में निसर्गत: होने वाले परिवर्तन का ध्यान रखते हुए शारीरिक शिक्षा का विचार किया गया। अनेक तज्ञ डॉक्टरों से इस सन्दर्भ में विचार परामर्श हेतु वे मिलीं, उनके साथ चर्चा की और पाठ्यक्रम में आवश्यक परिवर्तन करने का निर्णय लिया गया। स्त्री का मन सन्तुलित, संयमशील होने पर ही परिवार में शांति, समृद्धि, सुख रहता है, इस विचार से योगाभ्यास का स्वीकार समिति ने किया।

समिति के प्रारम्भकाल की सेविकाओं ने पुरुषों के लिये निर्माण किया गया पाठक्रम सीखा था। उसके कारण उनके भविष्यकालीन जीवन में कुछ कठिनाई तो नहीं आयी इसकी पूछ-ताछ वं० मौसीजी स्वयं उन सेविकाओं से मिलकर करती थीं।

अपने विचारों को अधिक मान्यता प्राप्त कराने की दृष्टि से १९५३ में 'स्त्री जीवन विकास परिषद्' का आयोजन उन्होंने किया। श्रीयमुनाबाई हेर्लेकर, श्रीकमलाबाई देशपाण्डे, डॉ० म्हसकर, डॉ० हरदास, महर्षि कर्वे आदि को आमन्त्रित किया गया। उनके सम्मुख स्त्री का स्वास्थ्य, शरीर सौष्ठव, सामर्थ्य कायम रखने के लिये व्यायाम के प्रकार और योगासन आदि बिन्दु विचारार्थ रखे और अपने सिद्धान्तों को तज्ञों की मान्यता प्राप्त हुयी।

स्त्री के साहित्यिक गुणों के उचित विकास के लिये तथा समिति के विचार समाज में पहुँचाने के लिये 'सेविका' वार्षिकी पत्रिका का मराठी में प्रकाशन उसी समय किया गया। बाद में उसको 'राष्ट्रसेविका' यह नाम दिया गया। १९५३ से आज तक उसका प्रकाशन हर वर्ष नियमित हो रहा है। बाद में हिन्दी तथा गुजराती भाषाओं में भी यह वार्षिक अंक प्रकाशित होने लगा है। 'सेविका प्रकाशन' द्वारा भारत की विविध भाषाओं में पुस्तकें प्रकाशित की जा रही हैं।

१९५३ के सम्मेलन में वं० मौसीजी ने स्त्री विषयक अपने विचारों को अधिक स्पष्टतापूर्वक प्रस्तुत किया। स्त्री परिवार का एक पहिया नहीं है तो सारथी है। सारथी की कुशलता तथा सुरक्षा का आश्वासन तथा आत्मविश्वास के आधार पर ही रथी अपने मार्ग पर आगे बढ़ सकता है, अपने कार्य में यशस्वी होता है। वास्तविक अर्थ से सहचारिणी का स्थान स्त्री को प्राप्त हो, ऐसा भी उनका आग्रह था।

स्त्री के नैसर्गिक गुणों का विकास करने की दृष्टि से 'गृहिणी विद्यालय' का शुभारम्भ उसी समय किया गया। प्रारम्भ में ग्रीष्मावकाश में दो मास के वर्ग लिये गये। आज बम्बई में 'गृहिणी विद्यालय' के अन्तर्गत विविध अल्पकालीन पाठ्यक्रमों का प्रशिक्षण दिया जाता है। वर्तमान अखिल भारतीय प्रतिष्ठान 'भारतीय श्रीविद्या निकेतन' उसी कल्पना का विकसित रूप है।

स्त्री प्रेमरूप है, शक्तिस्वरूपिणी है, प्रेरणास्रोत है परन्तु कभी-कभी उसको इसका विस्मरण होता है। अपने 'स्व' रूप

का उसे निरन्तर स्मरण रहे इस हेतु वं० मौसीजी ने स्त्री के आदर्शभूत गुणों का मूर्त रूप 'देवी अष्टभुजा' के माध्यम से महिलाओं के सम्मुख आराधना के लिये रखा। अन्धश्रद्धा से की हुई यह मूर्ति पूजा नहीं है। वह गुणों की पूजा है, गुणवत्ता विकास की शास्त्रशुद्ध प्रक्रिया है। किसी भी कार्य की सफलता के लिये दैवी शुभाशीष आवश्यक हैं। हमारा कार्य ईश्वरीय है, ईश्वर का आशीर्वाद हमें प्राप्त होगा ही। परन्तु हमें उसके अनुकूल बनना है तो उसी शक्ति का आदर्श रखना आवश्यक है। 'शिवो भूत्वा शिवं यजेत्' न्याय से हम शक्ति स्वरूपिणी बनें, इसी उद्देश्य से अष्टभुजा देवी की उपासना का प्रारम्भ हुआ।

देवी अष्टभुजा जगज्जननी है। उसके आठ हाथों में शस्त्र संकेतरूप में देने की आवश्यकता को मन में रखते हुए उन्होंने शस्त्र समूह निश्चित किया। तेजस्विता, सौन्दर्य, समाज-जागरण, ज्ञान, कर्तव्य-बोध, विशाल मातृत्व आदि गुणों के प्रतीक गैरिक ध्वज, पद्म, गीता, घण्टा, अग्निकुण्ड, खड्ग, जपमाला आदि शस्त्र एक-एक हाथ में दिये गये। एक हाथ वरदहस्त है, श्रद्धावानों, भक्तों को आश्वस्त करने वाला। मातृ शक्ति के प्रतीक रूप देवी अष्टभुजा की उपासना के पीछे वं० मौसीजी का इतना चिन्तन था।

समिति का केन्द्रस्थान वर्धा—वहाँ ऐसी मूर्ति १९७२ में प्रतिष्ठापित की गयी। बाद में बम्बई, भाग्यनगर, नागपुर आदि स्थानों पर ऐसी ही मूर्ति की प्रतिष्ठापना करने का निश्चय हुआ। अष्टभुजा-स्तोत्र की रचना हिन्दी में हुई। साप्ताहिक शाखाओं में उसका पठन होता है।

स्त्री निसर्गत: भक्तिभाव प्रधान तथा संगीत प्रेमी होती है। यह ध्यान में रखते हुए भजन-मण्डलों की रचना वं० मौसीजी ने की। जीजामाता, रानी लक्ष्मीबाई की जीवनी गीतबद्ध करने के लिये उन्होंने ही प्रेरणा दी। संगीत में, संस्कार करने का महान् सामर्थ्य है, ऐसा वे कहती थीं।

व्याख्यान—प्रवचनों से अधिक परिणाम चित्र का होता है। जन-जन पर सत्संस्कार करने की दृष्टि से विविध संस्कार क्षम विषयों पर चित्र प्रदर्शनी का आयोजन वं० मौसीजी की प्रेरणा से हुआ। १८५७ से १९४७ तक का स्वाधीनता संग्राम, शिवचरित्र, भगिनी निवेदिता, स्वामी विवेकानन्द, राष्ट्रपुरुष श्रीराम आदि विषयों पर प्रदर्शनी आयोजित की गयी। स्व० काकू रानडे का १९६९ में स्वर्गवास हुआ। तब तक उनके द्वारा निर्मित कपास के चित्र प्रदर्शनी के विशेष आकर्षण बिन्दु रहे हैं।

प्रथम प्रदर्शनी का आयोजन हुआ तब वं० मौसीजी ने नागपुर के ख्यातनाम चित्रकारों को आवाहन किया कि वे प्रदर्शनी के लिए एक चित्र बिना मूल्य बनाकर दें। उन्होंने कहा कि कलाकारों की कला का मूल्य पैसे में करना असंभव है अत: उन्हें सामग्री का व्यय दिया जायेगा। सभी ने हृदय पूर्वक सहयोग दिया और अपने एक दो चित्र दिये परन्तु चित्र सामग्री का व्यय भी नहीं लिया। अपने व्यक्तिगत उद्देश्यों से कला की साधना सभी करते हैं परन्तु समाज-प्रबोधन के लिये संस्कार करने के हेतु से कला का उपयोग करने की प्रेरणा वं० मौसीजी से उन कलाकारों को मिली। इस नयी अनुभूति ने कलाकारों का मन बदल दिया। भगवान जगन्नाथ

का रथ खींचने के लिए सहस्त्रों हाथों का बल लगना चाहिये। वैसा ही समाज रथ को आगे बढ़ाने के लिए हमें सभी का सक्रीय योगदान आवश्यक है यह भाव उन्होंने दृढ़ किया।

संस्कार प्रदान करने के अनेक माध्यम होते हैं। गीत, नाटच, चित्र जैसे कला माध्यमों को वं० मौसीजी ने प्रोत्साहित किया। राष्ट्रीय-वृत्ति निर्माण करने में इनका बहुत योगदान है। विविध पर्वों के समय ध्वजस्थान का सुशोभन प्रेरणा और संस्कार देने की दृष्टि से करने का आग्रह वं० मौसीजी रखती थीं।

महारानी लक्ष्मीबाई स्मृति शतसंवत्सरी १९५८ में सम्पन्न हुई। रानी की जीवनी पर आधारित प्रदर्शनी लगायी गयी उस समय समिति कार्य के लिये अपना भवन होने की आवश्यकता भी प्रतीत हो रही थी। नासिक नगर में रानी लक्ष्मीबाई की स्मृति में बहुत विशाल कार्यक्रम हुआ तब भवन के बारे में वं० मौसीजी को सभी सेविकाओं ने आग्रह पूर्वक निवेदन किया फलस्वरूप 'रानी भवन' अस्तित्व में आया। यही समिति की प्रथम वास्तु। वहाँ प्रवेश द्वार के पास ही खड्गधारिणी लक्ष्मीबाई का पुतला प्रहरी बनकर खड़ा है।

जीजामाता त्रिशताब्दि स्मृति महोत्सव, जीजामाता के जन्म स्थान पर सम्पन्न हुआ। वहाँ महिलाओं को सैनिकी प्रशिक्षण देने की व्यवस्था करने का उनका मानस था। मातृत्व भावना के साथ-साथ स्वसंरक्षण और प्रतिकार क्षमता के लिये महिलाओं को यह प्रशिक्षण आवश्यक है क्योंकि वे राष्ट्र का महत्त्वपूर्ण घटक हैं ऐसी उनकी धारणा थी।

अपनी संस्कृति का ध्वज भगवा है उसको सम्मान मिलना चाहिये इसलिए हिन्दु नववर्ष दिन अर्थात् वर्षप्रतिपदा के दिन हिन्दुओं को अपने घर पर यह ध्वज सम्मान पूर्वक फहराना चाहिये, यह कल्पना वं० मौसीजी ने १९७० के पूर्व रखी थी। यह ध्वज सदैव अपनी दृष्टि में रहे इसलिये छोटे पूजा ध्वज की भी कल्पना उन्होंने रूढ़ की। वह आज सर्व-मान्य हुई है। मातृभूमि की भक्ति हमारे जीवन का परम श्रेष्ठ संस्कार है। जिस गीत से यह संस्कार मिलता है, वह गीत है 'वन्दे मातरम्'। मातृभूमि का स्थान सर्वोपरि है, उसकी प्रतिमा हम सभी के मन-मन्दिर में सुप्रतिष्ठित होने से हमारा जीवन सफल हो सकता है। अत: 'वन्दे मातरम्' गीत की पृष्ठभूमि उसका अर्थ सभी सेविकाओं को ज्ञात करना चाहिये ऐसा उनका आग्रह था। समिति के बौद्धिक कार्यक्रमों में यह एक आवश्यक विषय बना। समिति के सभी प्रकट कार्यक्रमों के अन्त में दक्ष स्थिति में हाथ जोड़कर सम्पूर्ण वन्दे मातरम् गीत गाने की पद्धति वं० मौसीजी की प्रेरणा से ही प्रारम्भ हुई।

*

कुशलता कर्तृत्व की

जहाँ स्वच्छता वहाँ समृद्धि इसमें वं० मौसीजी का विश्वास था। स्वच्छता और सुव्यवस्थिता में वे अन्तर मानती थीं। कोई भी चीज व्यवस्थित रखी है याने वह स्वच्छ होगी ऐसी बात नहीं। वं० मौसीजी में इन दोनों का स्वच्छता और व्यवस्थितता का मनोहारी दर्शन होता था। उनके कपड़े, रूमाल, रसोई घर, यहाँ तक कि हाथ पोंछने के कपड़े अतीव स्वच्छ रहते थे। अचार की भरनीयों को बाँधे हुए कपड़े केवल स्वच्छ रहते थे ऐसा नहीं तो उन पर कुछ कढ़ाई काम भी किया हुआ रहता था। समिति कार्य के प्रारम्भ के पूर्व एक गृहिणी के नाते उनका घर जितना साफ-सुथरा तथा व्यवस्थित होता था, उतना ही समिति कार्य में व्यस्त होने के पश्चात् भी रहता था। वं० मौसीजी के पुत्रों के मित्र अभी भी कहते हैं कि केलकर के घर में जाना उनको इसलिये अच्छा लगता था कि वहाँ के वातावरण में एक अबोध सुखद अनुशासन का अनुभव होता था। वे कहते हैं कि लगभग १९४५ ईसवीं का वह काल था उन दिनों में सामान्यतः न दिखाई देने वाला दृश्य उनके घर में देखने को मिलता था। कमरे के मध्य में एक छोटी चौकी रखकर उस पर चाय के कप रखे जाते थे। सब लोग चौकी के बाजू में मण्डलाकार बैठकर चाय पीते थे। भोजन भी पुष्टिदायक और परोसने की पद्धति भी सुव्यवस्थित हरेक के लिए अलग-अलग कटोरी में दही जमा कर दिया जाता था।

प्रवास में जिस घर में उनका निवास होता था वहाँ उनका तुलसी पूजा का नियम ध्यान में रखकर सेविकाएँ तुलसी का गमला रखा करती थीं। वं० मौसीजी ने तुलसी के सामने बनाई हुयी अल्पना (रंगावली) भी प्रमाण बद्ध तथा रेखाएँ सुन्दर रहती थीं। गोपद्म भी वैसे ही निकाले जाते थे। पूजा की तैयारी करते समय एक-एक रंग के फूल अलग-अलग करके रखने की, भगवान को पुष्प चढ़ाते समय भी रंगसंगति का ध्यान देने की उनकी पद्धति थी। सौन्दर्य दृष्टि का दर्शन उनके प्रत्येक व्यवहार में होता था। उनके द्वारा गूंथी हुई मालाएँ भी अतीव सुन्दर आकर्षक होती थीं। शायद भविष्य में स्त्री-मानस-पुष्पों को संगठन सूत्र में गूंथने की कुशलता प्राप्त करने का यह पूर्वाभ्यास था।

वं० मौसीजी पूजा करते समय भगवान के सामने अलग-अलग प्रकार की पुष्प रचना करती थीं। वह देखने से ही मन प्रसन्न हो जाता था। वं० मौसीजी स्वयं प्रसन्नता का रूप थी इसलिए भी प्रसन्नता, आत्मीयता का भाव वे जहाँ जाती वहाँ प्रसृत करती थीं।

प्रवास पूर्ण होने पर वं० मौसीजी घर लौटती थीं तब धुले हुए साफ कपड़े आलमारी में रखे जाते। होल्डॉल धूप में डाला जाता था। फिर वह भी निर्धारित स्थान पर रखा जाता था। धोने के कपड़े अलग कर वे स्वयं धोती थीं। धोने के बाद सुखाना उनकी तह करना अतीव व्यवस्थित था। इन सभी बातों में वे दक्ष रहती थीं। कोई भी काम आज करें कल करें ऐसा कभी वे सोचती नहीं थीं। विश्राम का विचार कभी

उनके मन में आता नहीं था। अखण्ड कार्यरत रहना यही उनकी विशेषता थी।

अपने व्यस्त कार्यक्रमों में से समय निकालकर वे तीर्थ क्षेत्रों में जाने का क्रम बनाती थीं। वहाँ से वापस आने के पश्चात् वर्धा, नागपुर जहाँ भी वे रहती थीं वहाँ समिति-शाखा में यात्रा का पूरा वर्णन करती थीं। उसका वृत्त देखने से पता चलता है कि उनकी निरीक्षण शक्ति कितनी सूक्ष्म थी।

अपने प्रवास में वे जहाँ रहती थीं उस घर में देव पूजा करती थीं। मन-पूर्वक अपनी इच्छा से की हुई वह पूजा, पावित्र्य मांगल्य प्रकट करती थी। एक स्थान पर उनके ध्यान में आया कि वहाँ नीरांजन (दीप) और धूप दान नहीं है। उन्होंने वे चीजें खरीद कर चुपचाप उस घर की पूजा सामग्री में रख दी। वं० मौसीजी के वहाँ से जाने के पश्चात् उस गृह की स्वामिनी को इस बात का पता चला। उसका मन भाव-विभोर हो गया।

१९७६-७७ की घटना है वं० मौसीजी एक शाखा में गयीं। वह शाखा नयी थी। सभी में उत्साह भरा था। वं० मौसीजी के आगमन के कारण एक नये गीत की रचना की गयी। उसको अच्छा स्वर दिया और सभी सेविकाओं ने वह गीत गाया भी अच्छे ढंग से। सब खुश थीं—एक वं० मौसीजी को छोड़कर। उस गीत में एक पंक्ति थी 'हम मौसीजी के प्रति समर्पित है,' गीत पूर्ण होने पर वं० मौसीजी ने गीत पर आधारित बहुत से प्रश्न सेविकाओं को पूछे। अन्त में उन्होंने बताया कि उस गीत में थोड़ा परिवर्तन करना चाहिये ऐसा

लगता है, सभी ने स्वीकृति दी। उन्हें कल्पना नहीं थी कि कौनसा बदल वे सूचित कर रही हैं। वं० मौसीजी ने कहा कि 'मौसीजी के प्रति समर्पण' के स्थान पर समिति के कार्य के प्रति समर्पित हैं, ऐसे शब्द होने चाहिये। निष्ठा एक व्यक्ति के प्रति नहीं तो कार्य के प्रति हो। कार्य है समिति का, संगठन का, राष्ट्र का, किसी व्यक्ति का नहीं। व्यक्ति कितना भी श्रेष्ठ, वरिष्ठ हो कार्य से वह छोटा ही है। मैं भी प्रथम समिति की एक सेविका हूँ। ऐसा वे कहती थीं। व्यक्ति निरपेक्ष कार्य-समर्पित भावना निर्माण करने में वे कितनी सजग थीं इसका यह एक उदाहरण है।

वं० मौसीजी की स्मरण शक्ति और ग्रहण शक्ति बड़ी तीव्र थी। समिति के गीत उन्हें कंठस्थ थे। डायरी में लिखित वृत्त रखने की अपेक्षा मन पर अंकित करने का उनका आग्रह था। व्यक्तिगत गीत, समूह गीत, वन्दे मातरम् या कागज देख कर गाना उन्हें बिल्कुल मान्य नहीं था।

वं० मौसीजी गुणग्राहक थीं। उनके सम्पर्क में आनेवाले व्यक्ति में जो गुण उन्हें दिखाई देता उसको अधिक वृद्धिगत करने के लिये प्रोत्साहित करती थीं और उस व्यक्ति को अपने संगठन से जोड़ती थीं। आवश्यकतानुसार अपनी नाराजी भी वे निर्भीकता से परन्तु नम्रता से प्रकट करती थीं।

किसी व्यक्ति को एकबार देखने से उसका नाम तथा पूरा वृत्त सालों तक उनके स्मरण में रहता था उनके अन्तिम रुग्णकाल में इसकी प्रतीति आयी। उन्हें मिलने के लिये आने वाले लोग बहुत कालावधि के पश्चात् उन्हें मिल रहे थे।

परन्तु उन सभी का, उनके रिश्तेदारों का बड़े ध्यानपूर्वक वे कुशलमंगल पूछती थीं। उनकी ऐसी अवस्था में भी यह तीव्र स्मरणशक्ति आश्चर्यकारक लगती है।

उनकी सौजन्यपूर्ण नम्रता के कारण समिति की विशिष्ट प्रतिमा निर्माण हुई। एक नगर में रामायण प्रवचन के निमित्त वे गयी थीं। घर की वृद्ध स्त्री को प्रवचन सुनने के लिये आना व्यस्तता और रूढ़िवादिता के कारण असम्भव था। स्त्री का घर के बाहर निकलना वहाँ मान्य नहीं था। गृहकार्य तक ही स्त्री का क्षेत्र मर्यादित माना जाता था। वं० मौसीजी प्रवचन करने के लिये निकलते समय उस वृद्धा को बताकर अभिवादन करके जाती थीं और वापस आने के पश्चात् उस दिन क्या क्या बताया प्रवचन में यह बताती थी। उनकी वाणी का प्रभाव ऐसा था कि वह वृद्धा अपनी नाराजगी भूल जाती थी।

अपनी सेविकाओं की आर्थिक, पारिवारिक स्थिति के बारे में, वे पूरी जानकारी रखती थीं। जिस घर में वे रहती थीं उस घर के छोटे-बड़े सभी का ख्याल रखती थीं। उनकी सुविधा देखती थीं। उनके आत्मीयतापूर्ण व्यवहार से अनेकों के मन वे जीत लेती थीं।

१९७१ ईसवी—ग्वालियर सम्मेलन की एक घटना—सम्मेलन में शोभायात्रा का आयोजन किया था। गणवेश धारी सभी सेविकाएँ निर्धारित स्थान की ओर जा रही थीं। शोभायात्रा की रचना करने में शिक्षिकाएं व्यस्त थीं। वं० मौसीजी अपने कक्ष से सब देख रही थीं तब उनके ध्यान में आया कि एक प्रौढ़ सेविका दूर खड़ी है। उसने गणवेश नहीं

पहना है। उसका चेहरा दुखी है। वं० मौसीजी के ध्यान में बात आ गयी। उन्होंने एक प्रबन्धिका को भेजकर उस सेविका को बुला लिया। दूसरी एक प्रबन्धिका को पैसे देकर भण्डार विभाग से एक गणवेश की साड़ी लाने के लिये कहा। उस प्रौढ़ सेविका को साड़ी देकर मौसीजी ने कहा यह साड़ी आप पहनिये। मैं आपकी बड़ी बहिन के नाते साड़ी दे रही हूँ। उसे पहनकर आप शोभायात्रा में जाइये, ऐसा कहकर साड़ी दी। उस सेविका को साड़ी के अभाव के कारण शोभायात्रा में सम्मिलित होना असम्भव था और साड़ी खरीदने की स्थिति उस सेविका की नहीं थी यह वं० मौसीजी को पता थी। उस सेविका की आँखों में पानी आ गया। वं० मौसीजी के शब्दों का, प्रेम का, आत्मीयता का आदर करते हुए उस सेविका ने साड़ी ली और शीघ्र तैयार होकर शोभायात्रा में सम्मिलित हो गई। उसका आनन्द देखकर वं० मौसीजी भी तृप्त हुईं। अपनी सेविकाओं की कठिनाई समझकर आत्मीयता से वह दूर करने की उनकी वृत्ति अनुकरणीय है।

१९७६ की बात, द्वितीय आपात काल की कालरात्रि। अनेक परिवारों से प्रमुख पुरुष, महिलाएं, बालक कारागृह में बन्दी थे। उनको महीने में १–२ बार मिलने की अनुमति थी। नागपुर के कुछ बन्धु नासिक कारावास में थे। सामान्य परिवार की महिलाओं को हर बार इतना किराया खर्च करके मिलने जाना बहुत ही कठिन था। नागपुर की एक सेविका के पति नासिक कारावास में थे। उसकी भी यही समस्या थी। वं० मौसीजी उस सेविका से मिलने गईं। उसकी परिस्थिति उनको पता थी। उन दिनों समिति के ग्रीष्म वर्ग का आयोजन

स्थान-स्थान पर हो रहा था। नासिक में भी एक वर्ग था। वं० मौसीजी ने वर्ग का नियोजन करने वाली बहिनों को बताया कि उस सेविका को व्यवस्था के लिये नासिक वर्ग पर भेजा जाय। वहाँ वह पूरा समय रह सकेगी और अपने पति को मिल सकेगी। पति से मिलने हेतु नासिक जाने के लिये पैसे देने से उस सेविका के स्वाभिमान को ठेस पहुँचेगी यह समझकर वं० मौसीजी ने ऐसी व्यवस्था की। वर्ग की कालावधि में कम से कम दो बार वह सेविका अपने पति को मिल सकेगी यह देखा। उस सेविका को जब यह बताया गया तो वह गद्‌गद् हो गई। वं० मौसीजी की सहृदयता की ऐसी विशेषता थी।

उस सेविका ने वं० मौसीजी के चरण स्पर्श करते हुए कहा
मौसी ऐसी मिली हमें।
कमी किसी की कैसे रहे ?

वं० मौसीजी की मृदुता, वत्सलता, ऋजुता के उदाहरण शब्दों में अंकित करना कठिन है।

कुशलता कर्तृत्व की। मृदुलता मातृत्व की॥
धन्यता नेतृत्व की। मौसीजी यह आपकी॥

मातृभूमि हित देह समर्पण

किसी भी वृक्ष की जड़ें जमीन से जीवन रस प्राप्त करते करते गहराई तक पहुँचती हैं और वृक्ष को दृढ़ता तथा स्थिर आधार प्रदान करती हैं। वैसी ही मौसीजी से प्रेरणा पाकर समिति की शाखाओं को प्रान्त-प्रान्त में स्थिरता प्राप्त होने लगी। कार्य की व्याप्ति विशाल हो गयी।

उसी समय एक और कठोर आघात हुआ। १९७५ में आपातकाल के फलस्वरूप संघकार्य पर पाबन्दी लगाई गई। अप्रत्यक्ष रीति से समितिकार्य पर उसका परिणाम हुआ। इस परिस्थिति में आघात शान्त चित्त से सहन करने का मनोबल सेविकाओं ने प्रकट किया। अन्धा-धुन्द दमन चक्र से स्वयंसेवक परिवार के लोग त्रस्त हुए थे। रात-बिरात पुलिस आकर घर वालों को पकड़कर ले जाती थी। मूलभूत स्वातन्त्र्य का हनन हुआ था। कारावास से मुक्त होकर अपने घर के लोग घर आयेंगे ऐसी आशा नहीं थी। ऐसे आपदग्रस्त परिवारों को मिलना, उनका मनोबल कायम रखना, संघबंदी हटाने के लिये महिलाओं का प्रतिनिधि मण्डल लेकर कुछ लोगों को मिलना, इसी हेतु आयोजित सत्याग्रह हेतु महिलाओं की टोलियाँ बनाना, स्वयं ऐसी टोलिओं में सम्मिलित होना ऐसे अनेक विधकार्य प्रान्त-प्रान्त की सेविका बहिनें करती थीं। इतना ही नहीं तो एकत्रित आने के लिये सुविधा हो इस हेतु स्व-संरक्षण शिविर या संस्कार केन्द्रों का आयोजन कर अपना दायित्व पूरी तरह से कुशलता पूर्वक निभाया तथा

साहस, विवेक बुद्धि, सतर्कता का परिचय दिया। अनेक बहिनों ने अपने परिवार के लोगों को कारावास में पत्र लिखकर बताया कि क्षमा मांगकर घर में वापस आना उनको कतई पसन्द नहीं होगा। उन्होंने अपनी असुविधाओं को कभी उनके सामने प्रकट नहीं किया। इससे भारतीय महिलाओं की परम्परा पुनश्च एकबार गौरवान्वित हुयी। उनकी प्रेरणा स्रोत थी वं मौसीजी।

उन दिनों वं०मौसीजी के महाभारत पर प्रवचन आयोजित किये जाते थे। महाभारत तो राजनीति का ग्रंथ है। प्रवचन में वं० मौसीजी शासन विरोधी कुछ विधान करेंगी और उनको पकड़ना सुलभ होगा, इस हेतु से गुप्तचर प्रवचन में उपस्थित रहते। वं० मौसीजी इतनी कुशलता पूर्वक परिस्थिति का विवरण देती थीं कि उनके समक्ष में वह बात आती ही नहीं थी, श्रोतागण मात्र रहस्य समझ जाते थे। आपात काल में समिति के सभी कार्यक्रम सामान्य रूप से होते रहे। १९७७ में आपात काल समाप्त हुआ। नयी चेतना की लहर फैल गयी। सभी जगह कार्य में नया उत्साह भर गया।

वं० मौसीजी का स्वास्थ्य आज-कल नरम रहता था। बदलती हुई परिस्थिति में कार्य का दायित्व निभाना यही चिन्ता का विषय था। फिर भी प्रान्त-प्रान्त में उनके प्रवास का आयोजन होता रहा। अनेकों से मिलना-जुलना चलता था।

निर्धारित कार्यक्रमों के अनुसार १९७७ में समिति का अखिल भारतीय सम्मेलन होने वाला था। स्थान था आन्ध्र प्रदेश की राजधानी भाग्यनगर। वहाँ की सुविधा के अनुसार

पोंगल के अवकाश में तिथियाँ निश्चित की गई थीं। भगवान हमेशा कसौटी पर कसता रहता है। अचानक सम्मेलन के कुछ माह पूर्व तटवर्ती मछलीपट्टन जिले को प्रचण्ड तूफान का आघात सहन करना पड़ा। जीवन और वित्त-हानि की कोई सीमा नहीं थी। निकटवर्ती क्षेत्र में अपने बांधव इतने आपद ग्रस्त होने पर भी सम्मेलन करना ठीक होगा? इस पर सभी से विचार विमर्श के पश्चात् निर्णय हुआ कि सम्मेलन नित्य कार्यक्रमों का अंश है तो वह होगा ही लेकिन सादगी से होगा अतः सम्मेलन से भी अधिकतम राशि बचाकर राहत कार्य के लिये दी गई। वहाँ के राहत कार्य में समिति की सेविकाओं ने पूरा सहयोग दिया था।

भाग्यनगर सम्मेलन अच्छे प्रकार से सम्पन्न हुआ। वं० मौसीजी ने स्त्री की सात शक्तियों का मार्मिक उदाहरणों के साथ विवेचन किया। प्रत्येक सेविका को यही विचार अस्वस्थ कर रहा था कि अपनी मौसीजी बहुत थक गई हैं। मौसीजी थोड़ा विश्राम करेंगी तो ठीक होगा, परन्तु उनको किन शब्दों में, कौन बताये यह प्रश्न था? वं० मौसीजी से विदा लेते समय सभी की आँखों में पानी और वेदना का भाव था। फिर भी यह अन्तिम भेंट है ऐसा विचार किसी के मन में नहीं आया।

वं० मौसीजी भाग्यनगर से नागपुर आयीं। पुनश्च भ्रमण प्रारम्भ हुआ। चैत्र मास आया। श्रीराम-जन्मोत्सव सम्पन्न हुआ। मई मास में ग्रीष्मकालीन वर्गों में प्रवास भी पूरा हुआ। किसी को कल्पना भी नहीं थी कि यह अन्तिम विदाई का प्रवास है।

अगस्त १९७८ में नित्य जैसी अखिलभारतीय कार्यकारिणी की बैठक हुई। वर्ष भर की कार्य विस्तार की योजना बनी।

ग्रामीण और वनवासी क्षेत्र में कार्य करने की आवश्यकता पर बल दिया गया।

वं० मौसीजी को श्रीमद्भागवत पढ़ने की, सुनने की प्रबल इच्छा थी। कार्य व्यस्तता के कारण आज तक वह पूरी नहीं हो पाई थी। विदर्भ के ख्याति प्राप्त सन्त श्रद्धेय अच्युत महाराज और वं० मौसीजी के सौहार्द के सम्बन्ध थे। उनके भागवत प्रवचन का कार्यक्रम देवी अहिल्या मन्दिर में निश्चित किया गया। कार्यक्रम बहुत ही प्रभावी हुआ। समापन के पश्चात् वं० मौसीजी और पू० अच्युत महाराज के बीच हिंदुत्व उसका सम्वर्धन, देश की वर्तमान स्थिति आदि विषयों पर महत्वपूर्ण चर्चा हुई। हिन्दुत्व, अपनी प्राण शक्ति एवं सामर्थ्य बनने के लिए परिश्रम करने का संकल्प किया गया।

पितृपक्ष आया। पितरों का श्रद्धा युक्त स्मरण करने का यह काल था। भरतनगर में रामायण प्रवचनों का कार्यक्रम चल रहा था। कार्यक्रम के लिये अहिल्या मन्दिर से वहाँ जाना कष्टप्रद होगा इसलिए वं० मौसीजी अपनी सुपुत्री श्रीवत्सला-ताई के घर रहने गईं। कार्यक्रम में वं० मौसीजी की वाक्गंगा सबको पावन कर रही थी। अनन्त काल तक उनकी वाणी सुनते रहे ऐसा मन में भाव था। परन्तु परमेश्वर की योजना कौन जानता ?

भरतनगर का कार्यक्रम समाप्त हुआ। वं० मौसीजी की वाणी राममय हो गई थी। उसी भावावस्था में वं० मौसीजी विश्राम करने गईं। माँ बेटी की यथावत् बातचीत हुई। मन में समाधान था।

मध्य रात्रि का समय वं० मौसीजी को थोड़ी घबराहट सी लगी। वे बिस्तरे पर ही उठकर बैठी। धीरे-धीरे स्वच्छता

गृह में जाकर आयी। बेचैनी, बेहोशी में परिवर्तन होने की स्थिति में आई। डॉक्टर को बुलाया गया। निदान किया गया हृदयविकार का आघात सभी के मन पर आघात करने वाला बिना बिलम्ब मेडिकल कॉलेज हॉस्पीटल के अतिदक्षता विभाग में वं० मौसीजी को भर्ती किया गया। ज्ञात, उपलब्ध सभी उपाय होने लगे। बेहोशी, अर्धबेहोशी, होश-स्थितियाँ रंग बदलने लगी। आशा निराशा का खेल चल रहा था।

महाराष्ट्र राज्य की स्वास्थ्य मन्त्री डॉ० प्रमिलाताई टोपले समिति की सेविका होने के कारण उनको सूचित किया गया। सूचना मिलते ही तुरन्त मेडिकल कॉलेज में आयीं वं० मौसीजी को देखने। डॉक्टरों के साथ चर्चा हुई। नये-नये साधन देखकर वं० मौसीजी ने पूछा, क्या ये सभी साधन प्रत्येक रुग्ण को उपलब्ध होते हैं ? अगर यह विशेष व्यवस्था होगी, तो मुझे नहीं चाहिए। व्यवस्थाएँ सभी के लिए उपलब्ध होनी चाहिए। डॉक्टरों से वैसा आश्वासन देने पर ही उसका उपयोग किया गया।

आकाशवाणी, समाचार पत्र आदि प्रचार माध्यमों ने वं० मौसीजी के अस्वास्थ्य की वार्ता प्रसृत हुयी। जिसको पता चला, अस्पताल की ओर दौड़ पड़ा। अहिल्या मन्दिर की दूरभाष घण्टी अखण्ड बजने लगी नागपुर और अन्य स्थानों से आने वालों का तांता लगा। परन्तु उनसे मिलने की अनुमति नहीं थी। आने वालों के अति प्रेम के कारण वं० मौसीजी का दर्शन नहीं होने से निराशा होती थी। कभी किसी को गुस्सा आता था। परन्तु सभी को समझाने का कठिन कार्य भी करना पड़ता था।

वं० मौसीजी के निवास के कारण अस्पताल का वातावरण बदल गया। डॉक्टर, परिचारिका, कर्मचारी सब अपना काम प्रारम्भ करने के पूर्व वं० मौसीजी को अभिवादन करके जाते थे। अन्य लोगों को वं० मौसीजी से बोलने के लिये मना करने वाले डॉक्टर स्वयं वं० मौसीजी से श्रीरामायण से लेकर अनेक विषयों पर चर्चा करते थे।

वं० मौसीजी का स्वास्थ्य पूर्णतः पूर्व स्थिति पर नहीं आ रहा था इसलिये डॉक्टरों ने बम्बई के डॉ० अश्विन मेहता को बुलाया। अपनी औषधियों की योजना ठीक है यह समाधान कर लिया। वे सब जानते थे कि अपने इस रोगी का क्या महत्व है ?

काल जैसा नटखट कोई नहीं। डॉक्टर की औषधियों से वं० मौसीजी को आराम मिलने लगा। सब लोग निश्चिन्त होने लगे। अचानक कालपुरुष ने धक्का दिया। वं० मौसीजी का स्वास्थ्य पुनश्च बहुत बिगड़ गया। फिर से वही तनाव, चिन्ता, दौड़धूप, अस्वस्थता।

उस समय देवी अहिल्या मन्दिर में प्रवीण का वर्ग चल रहा था। केरल की सेविकाएँ प्रथम बार वर्ग में आयी थीं। उनको वं० मौसीजी का दर्शन करने की उत्सुकता थी। भाषा विचारों की अभिव्यक्ति का साधन है ऐसा सामान्यतः माना जाता है। ना तो वं० मौसीजी मलयालम् जानती थी न वे केरल की कन्याएँ हिन्दी जानती थीं। शब्दों से भी स्पर्श भावनाओं का अधिक श्रेष्ठ संवाहक है। वं० मौसीजी प्रत्येक सेविका का हाथ अपने हाथ पर रखकर पूछती थी, चावल

मिलता है न पेट भर ? समिति का कार्य बढ़ाना यही अपना जीवित कार्य मानोगी न् ? एक प्रकार से वे उनसे आश्वासन चाहती थीं। मन की भाषा मन समझ गया। शब्दों की आवश्यकता ही नहीं रही।

उस साल की दीपावली मेडिकल कॉलेज में ही मनाई गई। वं० मौसीजी को खड़े होकर थोड़ा चलने की शक्ति आई। डॉ० प्रमिलाताई टोपले पुनश्च मिलकर गयीं। स्वास्थ्य ठीक है यह देखकर उनसे घर जाने की अनुमति दिलाने की बात हुई। सभी को अतीव आनन्द हुआ। मौसीजी ने कहा था कि वे घर याने अहिल्या मन्दिर में ही आवेंगी। अहिल्या मन्दिर में सारी तैयारियाँ होने लगीं। परिचर्या की व्यवस्था कैसी करेंगे ? एकेक प्रान्त से पारी-पारी से किसको बुलायेंगे इसका विचार हुआ। मौसीजी को परहेज का भोजन कौन बनाकर देगी। स्वच्छता, स्नान आदि की कैसी व्यवस्था होगी, गीत, भजन कौन सुनायेगी ? वैसे तो पुस्तक या डायरी देखकर हर कोई गा सकती थी। परन्तु गीत या भजन कण्ठस्थ करके ही बोलना चाहिये ऐसा उनका आग्रह था। इसलिए समिति के गीत, भजन किस-किसके कण्ठस्थ हैं उनकी सूची तैयार हुई। पूरी योजना बनी। उसी समय दैव भी अपनी अलग योजना बना रहा था।

दि० २५ नवम्बर को दोपहर वं० मौसी के साथ सेविकाओं की चर्चा चल रही थी। हँसी मजाक भी चल रही थी। दि० २९ को रानी लक्ष्मीबाई का जन्म दिन था। उसी समय रानी लक्ष्मीबाई को घोष पर मान-वंदना देने के लिये उन्होंने आग्रह पूर्वक कहा। चौराहे पर हवा तेजी से बहती है वहाँ दीप

प्रज्वलित करने में कठिनाई होगी, दीप हवा से न बुझे इसलिए लालटेन की कांच उस पर रखने के लिये ले जानी चाहिये माला, प्रसाद आरती की व्यवस्था क्या होगी इसकी चर्चा हुई मौसीजी, दीप को सुरक्षित रखने की व्यवस्था आपने दक्षता पूर्वक की परन्तु आपका प्राण दीपक ना बुझे, इसके लिये हम कुछ नहीं कर सके। हमारा प्रेम, हमारी भावना, हमारी निष्ठा इनमें से किसी का कवच इतना शक्तिशाली नहीं बन पाया।

दि० २६ की रात कालपुरुष ने अपना मोर्चा बना लिया। इतनी चुपके से, किसी को भी पता नहीं चला। सब कोई सतर्कता भूल गये। थोड़ी सी ढिलाई आई। उस रात अस्पताल में प्रमिलाताई के साथ मंगला थी। प्रातः ३ बजे होंगे। मौसीजी एकदम बेचैन हो गयीं, कराह की ध्वनि मुंह से निकल पड़ी। उनके विवर्ण चेहरे को देखकर परिस्थिति की गंभीरता ध्यान में आयी। डॉक्टरों को सूचना दी गयी वे भी दौड़कर आये। मानवी उपचारों, प्रयत्नों की भरमार रही फिर भी कालपुरुष का इरादा पक्का था, वह अधिक सजग था। उसने अवसर पाया और अपना उद्देश्य पूरा किया वह यशस्वी हुआ। कालपुरुष उनके प्राण तो ले जा सका परन्तु जो चेतना वं० मौसीजी की प्रेरणा से सहस्रों सेविकाओं के मन में जगी थीं उसको किंचित भी धक्का लगने में वह असमर्थ था। बड़ी शान से कालपुरुष चला गया। जीवात्मा देह बंधन से मुक्त हुई। दि० २७ को प्रातः लगभग ३-४० बजे थे।

ज्ञानेश्वर पुण्यतिथि का समारोह स्वर्ग में मनाया जा रहा था उसमें सम्मिलित होने के लिये प्रातःकाल के पवित्र पुण्यप्रद मुहूर्त पर वं० मौसीजी ने प्रस्थान किया।

डॉक्टर, परिचारिका बड़े दुखी मन से दूर हटे। उन्होंने भारी मन से वं० मौसीजी को प्रणाम किया और चुपचाप वहाँ से चल दिये।

यह दुष्ट वार्ता बिजली जैसी फैल गई। आकाशवाणी के सुबह के वार्तापट से यह शोक वार्ता प्रसारित की गई। सेविकाओं पर मानों पहाड़ टूट पड़ा। जिसको जो वाहन उपलब्ध हुआ उससे वे नागपुर की ओर निकल पड़ीं। अपनी परमप्रिय, श्रद्धा केन्द्र मौसीजी का अन्तिम दर्शन करने के लिये नागपुर पहुँचना इतना ही उनके ध्यान में था।

अन्तिम विदाई का समय निश्चित किया गया। दि० २८ को दोपहर ४ बजे। वं० मौसीजी का अचेतन देह अस्पताल से जाकर सर्व-प्रथम उनके सुपुत्र एडवोकेट मनोहरराव के निवास में कुछ समय के लिये रखा गया। परन्तु उनका मन जहाँ के कण-कण से एकरूप हुआ था वह उनके द्वारा निर्मित वास्तु अहिल्या मन्दिर उनकी प्रतीक्षा कर रही थी। इस वास्तु ने आज तक मौसीजी के अनेक रूप देखे थे, आज यह भी रूप देखने का धैर्य यह वास्तु जुटा रही थी। रामधुन, रामनाम संकीर्तन, गीता पठन की धीर-गम्भीर मन्द ध्वनि मण्डप में गूंज रही थी परन्तु उसमें राम नहीं था। राममय हुई मौसीजी का यह अन्तिम दर्शन अपने नेत्र-संपुटों से भर लेने का सभी का प्रयत्न था।

दोपहर ठीक ४ बजे वं० मौसीजी का पार्थिव शरीर सुशोभित ट्रक पर रखा गया। महायात्रा का प्रारम्भ हुआ ऐसी यात्रा जहाँ से वापस आने का कोई रास्ता नहीं था।

यह यात्रा अलौकिक थी। महिलाओं की उपस्थिति बड़ी संख्या में थी। लेकिन कहीं भी कोई आवाज नहीं थी, ऐसा दृश्य नागपुर नगरी ने कभी नहीं देखा था।

'श्रीशक्तिपीठ'—वं॰ मौसीजी द्वारा निर्मित वास्तु उसी स्थान पर उनको अन्तिम मान-वन्दना दी गयी। मौसीजी, वं० ताईजी आपटे के कंधे पर कार्य की धुरा रखकर महाप्रवास के अन्तिम चरण के लिये निकल पड़ी। किसी से बात न करती हुई, वापस न आने का दिनांक बताने का अपना क्रम छोड़कर चल पड़ी। सेविकाओं के मूक आंसुओं का प्रवाह रुक न सका।

एक तेज शलाका अनन्त तेज में विलीन हो गयी। अपने तेजकण का वलय पीछे छोड़ते हुए वह चली आयीं। जिसने जीवन दिया था उसी में अपना जीवन विसर्जित किया।

तोमार काजे जीवन दिबो
कथा दिलाम राजार राजा
तोमार शक्ति तोमार काजे
गंगाजले गंगापूजा

वं० मौसीजी का पार्थिव शरीर आज हमारे मध्य नहीं है अपितु प्रेरणा रूप में उनका अस्तित्व प्रतिक्षण भासमान होता है। जो-जो कल्पनाएँ उन्होंने बीज रूप में प्रकट की थीं वे आज अंकुरित होते हुए दिखाई देती हैं। उनकी भविष्यवेधी क्षमता का अनुमान हमें होता है। जिन दिनों में उन्होंने ये कल्पनाएँ प्रकट की उस समय उनका उपहास किया गया। लेकिन आज उन कल्पनाओं का महत्त्व अनायास प्रकट हो रहा है। समिति उन्हीं मार्गदर्शक बिन्दुओं पर आगे बढ़ रही है।

सांस्कृतिक क्षेत्र में गीत, नाट्य, स्थिर चित्र व्यावसायिक दृष्टि से उद्योग मन्दिर, शैक्षिक क्षेत्र में बालिका शिक्षा का मूलगामी विचार, वाचनालय, संस्कार केन्द्र, छात्रावास, जन सामान्यों तक पहुँचने के लिये कीर्तन वर्ग आदि विविध प्रकारों से समिति का कार्य सर्वसमावेशक बनने की दिशा में आगे बढ़ रहा है।

भविष्य ही मूल्यांकन करेगा इस कार्य का।